उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अजय शंकर सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	18
आनन्द सिंह वर्मा (डा.) **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य	132
आर. डी. विश्वकर्मा (डा.) **बनाम** भारत संघ और अन्य	69
कमला देवी (श्रीमती) **बनाम** मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स और अन्य	102
जवाहर लाल शुक्ला **बनाम** मुख्य चिकित्सा अधीक्षक, मैनपुरी और अन्य	12
जीवन सिंह और अन्य **बनाम** ब्रह्म दास और अन्य	147
न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** अनीता और अन्य	24
पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड और अन्य **बनाम** राहुल डोगरा	64
प्रीत पाल सिंह **बनाम** भारत संघ और अन्य	93
ब्रज बिहारी लाल **बनाम** श्रीमती सरवी देवी और अन्य	122
माधुरी सिंह (डा.) **बनाम** भारत संघ और अन्य	1
यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** श्रीमती मुन्नी देवी और अन्य	116
राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन **बनाम** श्रीमती इंग्लेश और अन्य	111
राजिन्दर शर्मा **बनाम** न्यू इंडिया एश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य	97
रामा नन्द और अन्य **बनाम** अमृत लाल और अन्य	45

पृष्ठ संख्या

श्रीमती इंग्लेश और अन्य **बनाम** राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 111)

संदीप कुमार और अन्य **बनाम** मदन कुमार दुबे और अन्य 90

स्वर्ण चौधरी **बनाम** नगर निगम, शिमला 138

हबीब **बनाम** टी. सी. सेबास्टीयन और एक अन्य 50

संसद् के अधिनियम

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 (1) – (15)

जनवरी, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147-ख(1), 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – 2,70,000/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि स्वीकार की जानी – बीमा कंपनी द्वारा विधि की अपेक्षाओं पर ध्यान न देने के आधार पर चुनौती – जहां न्यायालय द्वारा साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर दावा याचिका स्वीकार की गई हो वहां ऐसे निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम **श्रीमती मुन्नी देवी और अन्य** 116

संसद् के अधिनियम

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 (1) – (15)

पृष्ठ संख्या 1 – 154 **(2014) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जनवरी, 2014 (पृष्ठ संख्या 1 – 154)

संपादक-मंडल

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव
एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष,
लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन
अकादमी, मसूरी (उत्तराखंड)

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ
विश्वविद्यालय

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली ख़ां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1972

– नियम 13 [सपठित हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय पेंशन स्कीम का पैरा 1.11 (i)] – विश्वविद्यालय में सहायक सिविल सर्जन ग्रेड-1 (जी) के पद पर नियुक्ति – पेंशन – पूर्व सेवा का लाभ – पेंशन की हक़दारी – यदि पदधारी राज्य सरकार से प्राप्त सेवानिवृत्ति फायदों को दस्तावेजी साक्ष्य सहित और प्राप्त की गई धनराशि पर ब्याज सहित धनराशि का प्रतिदाय कर देता है तो वह वर्तमान सेवा पेंशन और सेवानिवृत्ति फायदों के लिए हक़दार होगा ।

आनन्द सिंह वर्मा (डा.) बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य** 132

जम्मू-कश्मीर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1987 (1987 का 16)

– धारा 11 – दुकान और उससे जुड़ी वस्तुओं का बीमा – निकट के आवासीय भवन में आग लगने से हुए नुकसान के लिए दावा – बीमा कवर से आवासीय भवन का बीमा कराना साबित न होना – बीमाकर्ता आवासीय मकान में हुए नुकसान के लिए दायी नहीं है – बीमाकृत को कोई प्रतिकर नहीं दिलाया जा सकता ।

राजिन्दर शर्मा बनाम **न्यू इंडिया एश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य** 97

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957

– धारा 103 – सेवा के दौरान हृदय गति रुक जाने के कारण कर्मचारी की मृत्यु – अनुकंपा नियुक्ति – इस आधार पर इनकार कि कर्मचारी की मृत्यु दुर्घटना के कारण मृत्यु होने से नहीं हुई थी – रिट याचिका – अनुकंपा नियुक्ति

पृष्ठ संख्या

अचानक वित्तीय कठिनाई से निपटने के लिए सामान्य नियमों के अपवाद में तात्पर्यत है – अतः, बीमारी से मृत्यु के मामले में ऐसी नियुक्ति के लिए विचार करने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम **राहुल डोगरा** 64

– धारा 103 – कर्मचारी की साधारण लिपिक के रूप में नियुक्ति – ज्येष्ठ लिपिक के पद पर प्रोन्नति – अन्य विभाग में रिक्ति के विज्ञापन के जवाब में आवेदन – सीधी भर्ती प्रक्रिया द्वारा जांच और आरक्षण लिपिक के रूप में नियुक्ति – ज्येष्ठता के लिए पिछली सेवा का फायदा देने के लिए समावेदन – इनकार – रिट याचिका – चूंकि कर्मचारी की वाणिज्यिक विभाग में नियुक्ति सीधी भर्ती द्वारा की गई थी इसलिए कर्मचारी पिछली सेवा के आधार पर ज्येष्ठता का दावा नहीं कर सकता ।

प्रीत पाल सिंह बनाम **भारत संघ और अन्य** 93

– धारा 103 [सपठित नियुक्ति, प्रोन्नति ज्येष्ठता आदि नियम, 1971 का नियम 10, 11 और 12] – विभाग में उच्चतर पद पर नियुक्ति – परिवीक्षा – सेवक द्वारा परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी न करने के कारण प्रत्यावर्तन आदेश – आदेश को कलंकित करने वाले आदेश के रूप में मानकर आक्षेपित किया जाना – जहां आदेश में कलंकित करने वाले शब्दों का उल्लेख न हो वहां ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

आर. डी. विश्वकर्मा (डा.) बनाम **भारत संघ और अन्य** 69

– धारा 103 [सपठित नियुक्ति, प्रोन्नति, ज्येष्ठता

पृष्ठ संख्या

आदि नियम, 1971 – नियम 12] – उच्चतर पद पर नियुक्ति – परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी न की जानी – प्रत्यावर्तन आदेश – उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका – विशेष इजाज़त याचिका में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकरण की अधिकारिता का उल्लेख – इस आधार पर सेवक का वेतन रोका जाना – विभाग इस आधार पर सेवक को वेतन देने से इनकार नहीं कर सकता ।

आर. डी. विश्वकर्मा (डा.) बनाम **भारत संघ और अन्य** 69

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 147-ख(1), 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – 2,70,000/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि स्वीकार की जानी – बीमा कंपनी द्वारा विधि की अपेक्षाओं पर ध्यान न देने के आधार पर चुनौती – जहां न्यायालय द्वारा साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर दावा याचिका स्वीकार की गई हो वहां ऐसे निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि. बनाम **श्रीमती मुन्नी देवी और अन्य** 116

– धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – जहां बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ हो वहां भी बीमा कंपनी अपने दायित्व से नहीं बच सकती – तथापि, कंपनी संदत्त की गई रकम बीमाकृत व्यक्ति से निष्पादन कार्यवाहियों में वसूल कर सकती है ।

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **अनीता और अन्य** 24

पृष्ठ संख्या

– धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा साक्ष्य के आधार पर तर्कसंगत अधिनिर्णय पारित किया जाना – अपील में चुनौती – ऐसे किसी अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है जो पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर दिया गया हो ।

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन बनाम **श्रीमती इंग्लेश और अन्य** 111

– धारा 168(2) और 173 – मोटर दुर्घटना दावा – प्रतिकर बढ़ाने के लिए अपील – अपील के साथ पंचाट की प्रति संलग्न करने की अपेक्षा – पंचाट की कार्बन प्रति के साथ अपील फाइल की जानी – जहां दावेदार द्वारा प्रतिकर बढ़ाने के लिए अपील फाइल की गई हो वहां उसे अपील के ज्ञापन के साथ सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति संलग्न करनी चाहिए – कार्बन प्रति देने की अपेक्षा का उपबंध दावेदार को केवल निष्पादन हेतु समर्थ बनाने के लिए किया गया है ।

हबीब बनाम **टी. सी. सेबास्टीयन और एक अन्य** 50

– धारा 168(2) और 173 [सपठित केरल मोटर यान नियम, 1989 – नियम 239(3), 246, 253, 254 और 398] – मोटर दुर्घटना दावा – अधिकरणों द्वारा पंचाट – पंचाट की प्रति जारी करने की अपेक्षा – अनुपालन अधिकरणों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे पंचाट की प्रतियां जारी करने के मामले में प्रक्रियात्मक नियमों पर सख्ती से पालन करें ।

हबीब बनाम **टी. सी. सेबास्टीयन और एक अन्य** 50

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 – अस्थायी नियुक्ति – सेवा से हटाया जाना – लम्बी अवधि तक सेवा करने के आधार पर

पृष्ठ संख्या

नियमित किए जाने का दावा – संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर नियमित करने के लिए अयोग्य पाया जाना – निदेश के लिए रिट याचिका – याची द्वारा कभी भी यह दावा न किया जाना कि उसकी नियुक्ति नियमों के अनुसरण में की गई थी – याची के हक में निदेश जारी नहीं किए जा सकते ।

माधुरी सिंह (डा.) बनाम **भारत संघ और अन्य** 1

– अनुच्छेद 226 – दंत हाइजिनिस्ट के रूप में नियुक्ति – प्रशिक्षण की अपेक्षा – याची को नियमों के अनुसार प्रशिक्षण प्राप्त करने का निदेश दिया जाना – याची द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बजाय लिखा-पढ़ी करना – प्रोन्नति के लिए न्यायालय से परमादेश रिट जारी करने की अपेक्षा – चूंकि याची ने प्रशिक्षण प्राप्त न करने के कारण नियमों द्वारा विहित न्यूनतम अर्हता पूरी नहीं की अतः उसके हक में परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती ।

जवाहर लाल शुक्ला बनाम **मुख्य चिकित्सा अधीक्षक, मैनपुरी और अन्य** 12

– अनुच्छेद 226 – याची को सरकारी महिला पालिटेक्निक की दीवार के निर्माण का कार्य सौंपा जाना – याची द्वारा मानकों और विशिष्टियों की उपेक्षा करते हुए अपनी मर्जी से दीवार का निर्माण करना – दीवार गिर जाने पर प्रतिकूल प्रविष्टि और नुकसान की 75 प्रतिशत धनराशि की वसूली का मामूली दंड दिया जाना – अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका फाइल करके आदेश को चुनौती – चूंकि याची के प्रति उदार मत अपनाकर मामूली दंड दिया गया है अतः ऐसे आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

अजय शंकर सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 18

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 और 227 [सपठित हिमाचल प्रदेश जोत (चकबंदी और खण्डकरण का निवारण) अधिनियम, 1971 की धारा 54] – रिट – राज्य द्वारा भूमि का आबंटन – आबंटन नियमानुसार होना – आक्षेप – यदि राज्य द्वारा किसी भूमि का आबंटन नियमानुसार किया जाता है तो इस पर आक्षेप इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि उक्त प्रश्नगत भूमि का प्रयोग मंदिर में आने-जाने के लिए किया जाता है ।

जीवन सिंह और अन्य बनाम **ब्रह्म दास और अन्य** 147

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया एवं बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13] – द्वितीय अपील – मकान मालिक की सहमति के बिना किराएदारी मकान में तात्विक परिवर्तन करना – मकान मालिक को तात्विक परिवर्तन की मात्र जानकारी होना – बेदखली का वाद फाइल करना – यदि किसी किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में मकान मालिक की सहमति के बिना तात्विक परिवर्तन किया जाता है यह कथन करते हुए कि इसकी जानकारी मकान मालिक को है तो सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर फाइल बेदखली के लिए वाद को डिक्री कर दिया जाएगा क्योंकि मात्र जानकारी होना सहमति की कोटि में नहीं आ सकेगा और मकान मालिक के वैध उत्तराधिकारी आबद्ध नहीं होंगे ।

कमला देवी (श्रीमती) बनाम **मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स और अन्य** 102

– आदेश 6, नियम 17 – वाद पत्र – संशोधन – संशोधनों के लिए वादी को तीन बार अवसर दिए जाने

पृष्ठ संख्या

– वादी के काउंसेल द्वारा अतिरिक्त लिखित कथन फाइल न करने के लिए पृष्ठांकन किया जाना – बाद में काउंसेल को बदलने पर पूर्वतर काउंसेल की गलत सलाह का आधार लिया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा और अवसर देने से इनकार – रिट याचिका में चुनौती – गलत सलाह की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती ।

रामा नन्द और अन्य बनाम **अमृत लाल और अन्य** 45

– आदेश 39, नियम 1 – अपील न्यायालय द्वारा अस्थायी व्यादेश – मंजूर या नामंजूर करने के लिए अपेक्षाएं – अपील न्यायालय द्वारा कब्जे के बारे में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना यथास्थिति बनाए रखने का आदेश पारित नहीं किया जा सकता – ऐसा आदेश पारित करते समय न्यायालय को सुविधा के संतुलन और अपूरणीय क्षति पर भी विचार करना चाहिए ।

संदीप कुमार और अन्य बनाम **मदन कुमार दुबे और अन्य** 90

हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972

– धारा 104 – भूमि पर प्रतिकूल कब्जा – सांपत्तिक अधिकारों के लिए दावा – मुआवज़ा अधिकारी द्वारा सांपत्तिक अधिकारों की मंजूरी – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – सिविल न्यायालय द्वारा सांपत्तिक अधिकारों के प्रश्न पर केवल वहां विचार किया जा सकता है जहां यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया हो कि अधिनियम द्वारा परिकल्पित कानूनी प्राधिकारियों द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों का या अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया था ।

ब्रज बिहारी लाल बनाम **श्रीमती सरवी देवी और अन्य** 122

पृष्ठ संख्या

हिमाचल प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1994

– धारा 116 और 154 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227] – अप्राधिकृत निर्माण – निगम की ऐसे निर्माण को गिराने या हटाने की शक्ति – निचले न्यायालयों द्वारा स्थल की जांच न कराकर केवल फोटोग्राफ के आधार पर निष्कर्ष निकालना – ऐसा निष्कर्ष कायम नहीं रखा जा सकता – सही निष्कर्ष निकालने के लिए स्थल की जांच के लिए जांच अधिकारी को नियुक्त करना और उसकी रिपोर्ट के आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित होगा ।

स्वर्ण चौधरी बनाम **नगर निगम, शिमला** 138

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग,
नई दिल्ली-110001

माधुरी सिंह (डा.)

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 3 जनवरी, 2011

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति पंकज मित्तल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – अस्थायी नियुक्ति – सेवा से हटाया जाना – लम्बी अवधि तक सेवा करने के आधार पर नियमित किए जाने का दावा – संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर नियमित करने के लिए अयोग्य पाया जाना – निदेश के लिए रिट याचिका – याची द्वारा कभी भी यह दावा न किया जाना कि उसकी नियुक्ति नियमों के अनुसरण में की गई थी – याची के हक़ में निदेश जारी नहीं किए जा सकते ।

याची को आर्डिनेंस फैक्ट्री में कनिष्ठ चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था । याची को सेवा से हटाया गया था इसलिए उसने प्रत्यर्थियों को स्वयं को नियमित करने का निदेश करने के लिए वर्तमान रिट याचिकाएं फाइल कीं । रिट याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची ने किसी भी स्तर पर यह दावा नहीं किया था कि वर्ष 1973 में उसकी नियुक्ति सुसंगत नियमों में उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी और यह एक नियमित नियुक्ति थी । याची ने आरंभ से ही यह दावा किया है कि लंबी अवधि तक की गई उसकी सेवा को ध्यान में रखते हुए उसकी सेवाएं नियमित की जानी चाहिए । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने 1987 में फाइल किए गए उक्त मूल आवेदन में तारीख 14 मार्च, 1991 को पारित आदेश में, तारीख 18 सितंबर, 1986 के सेवा समाप्ति के आदेश को अभिखंडित करते हुए याची की पुन: बहाली का निदेश दिया था और यह भी निदेश दिया था कि संघ लोक सेवा आयोग याची को नियमित करने के मामले में विचार करे । जब तारीख 14 मार्च, 1991 के आदेश के निदेशों के अनुक्रम में याची से लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की वांछा की गई तब याची ने स्पष्टीकरण हेतु केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में समावेदन किया था । केन्द्रीय प्रशासनिक

अधिकरण ने यह स्पष्ट किया था कि नियमित करने के लिए लिखित परीक्षा या साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है और संघ लोक सेवा आयोग द्वारा नियमित करने की प्रक्रिया याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर पूरी की जाए । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा दिए गए उक्त स्पष्टीकरण के आधार पर संघ लोक सेवा आयोग ने याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर विचार किया और उसे नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाया । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, संघ लोक सेवा आयोग की सूचना की प्रति, 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25901 के साथ उपाबंध सं. 8 के रूप में फाइल की गई है । अत: यह प्रतीत होता है कि याची को नियमित किए जाने के मामले में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर विचार किया गया था तथा याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर विचार करने के पश्चात् संघ लोक सेवा आयोग ने उसे नियमित करने के योग्य नहीं पाया । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने अपने समक्ष प्रस्तुत की गई वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर विचार किया और संघ लोक सेवा आयोग द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की । अत: यह माना जा सकता है कि याची का वर्तमान मामला मात्र याची की सेवा समाप्ति का मामला नहीं था । याची के मामले पर विचार किया गया था और तत्पश्चात्, भारत के राष्ट्रपति ने तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश द्वारा याची की सेवाएं समाप्त की थीं तथा एक मास की सूचना के स्थान पर एक मास के वेतन और अन्य भत्तों का भुगतान करने का निदेश दिया था । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को याची को नियमित किए जाने के योग्य न पाए जाने पर याची की सेवाएं समाप्त करने का निदेश देने वाले भारत के राष्ट्रपति के तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश में कोई भी अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 22, 23, 26, 27 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	(2000) (85) एफ. एल. आर. 592 (इला.) : **शमशाद अहमद और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ;**	17, 29
[2000]	2000 (85) एफ. एल. आर. 566 (इला.) : **पुरुषोत्तम सिंह** बनाम **कलक्टर, हमीर पुर और अन्य ;**	17, 28, 29

[2000] 2000 (85) एफ. एल. आर. 545 :
एम. लिंगम्मा बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य** । 17, 29, 32

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 और 25901.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिकाएं ।

याचियों की ओर से श्री के. पी. अग्रवाल और कुमारी महिमा मौर्या

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आर. पी. श्रीवास्तव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति पंकज मित्तल ने दिया ।

निर्णय

उपरोक्त क्रम सं. 2 पर दर्शित 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट सं. 25901 याची डा. (श्रीमती) माधुरी सिंह ने अन्य बातों के साथ-साथ केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में फाइल किए गए 1993 के मूल आवेदन सं. 1852 में तारीख 12 अप्रैल, 2001 को पारित आदेश (उपरोक्त 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 के उपाबंध सं. 1) को अभिखंडित करने के लिए फाइल की है । याची द्वारा उक्त आवेदन याची की सेवा समाप्त करने के विरुद्ध फाइल किया गया था ।

2. उपरोक्त क्रम सं. 1 पर दर्शित 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 अन्य बातों के साथ-साथ केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में याची द्वारा फाइल किए गए 1993 के मूल आवेदन सं. 253 में याची की दक्षता रोध पार करने की आज्ञा देने से इनकार करने के तारीख 12 अप्रैल, 2001 को पारित आदेश (2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 के उपाबंध सं. 1) को अभिखंडित करने की प्रार्थना करते हुए फाइल की गई है ।

3. याची द्वारा फाइल किए गए उपरोक्त दोनों मूल आवेदनों को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा तारीख 12 अप्रैल, 2001 के एक ही आदेश द्वारा विनिश्चित किया गया था और चूंकि उपरोक्त दोनों रिट याचिकाओं में एक जैसे तथ्य और विधि के एक जैसे प्रश्न अंतर्वलित हैं इसलिए उपरोक्त दोनों रिट याचिकाएं इस न्यायालय द्वारा एक ही आदेश द्वारा निपटाई जा रही हैं ।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि याची 1973 में कनिष्ठ चिकित्सा अधिकारी के रूप में नियुक्त हुई थी और उसकी तैनाती आर्डिनेंस फैक्ट्री, कानपुर में की गई थी । तारीख 26 जून, 1980 को सेवा समाप्त किए जाने तक याची सेवा में सतत रूप से बनी रही थी । याची ने अपनी सेवा समाप्त किए जाने के विरुद्ध नगर मुंसिफ के न्यायालय में वाद फाइल किया था । यह वाद डिक्री किया गया था और याची को तारीख 8 सितंबर, 1986 के आदेश द्वारा तारीख 23 मार्च, 1986 से पुन: स्थापित कर दिया गया था ।

5. याची को पुन: तारीख 18 सितंबर, 1986 से सेवा से हटा दिया गया था जिसके पश्चात् याची ने मूल आवेदन अर्थात् 1987 का मूल आवेदन सं. 25 फाइल किया था ।

6. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने तारीख 14 मार्च, 1991 के आदेश द्वारा तारीख 18 सितंबर, 1986 के आदेश को अभिखंडित करते हुए यह निदेश दिया कि याची को पारिणामिक लाभ देते हुए सेवा में सतत रूप से समझा जाए । संघ लोक सेवा आयोग को भी यह निदेश दिया गया था कि याची को नियमित करने के मामले पर विचार करे ।

7. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के तारीख 14 मार्च, 1991 के उक्त आदेश के अनुसरण में याची को तारीख 14 अक्तूबर, 1991 से आर्डिनेंस क्लोथिंग फैक्ट्री, शाहजहांपुर में कनिष्ठ चिकित्सा अधिकारी के रूप में सेवा में पुन: बहाल कर दिया गया था ।

8. तारीख 14 मार्च, 1991 के उक्त आदेश में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा दिए गए निदेशों को ध्यान में रखते हुए याची को नियमित करने के प्रयोजन से तारीख 13 अगस्त, 1991 को लिखित परीक्षा के लिए उपस्थित होने के लिए कहा गया था । तथापि, याची उक्त परीक्षा में उपस्थित नहीं हुई किन्तु उसने एक पत्र द्वारा अभ्यावेदन भेजा । उसी समय याची ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष एक आवेदन देकर उक्त तारीख 14 मार्च, 1991 के आदेश का स्पष्टीकरण चाहा । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने यह स्पष्ट किया कि नियमित करने के लिए लिखित परीक्षा और साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है तथा नियमित करने का कार्य संघ लोक सेवा आयोग द्वारा याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर सम्पन्न करने का निदेश दिया ।

9. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा दिए गए उक्त स्पष्टीकरण का

अनुसरण करते हुए संघ लोक सेवा आयोग ने याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का परिशीलन किया और याची को नियमित किए जाने के अयोग्य पाया । इस संबंध में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा भेजी गई सूचना 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25901 में उपाबंध सं. 8 के रूप में फाइल की गई है ।

10. संघ लोक सेवा आयोग द्वारा याची को नियमित करने के मामले पर विचार किया गया था और उसे नियमित करने योग्य न पाए जाने पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा तारीख 29 अक्तूबर, 1993 को याची की सेवाएं समाप्त किए जाने का आदेश पारित किया गया और एक मास की सूचना के बदले में एक मास के वेतन और अन्य भत्ते देने का निदेश दिया गया । तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के उक्त आदेश की प्रति 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25900 में उपाबंध सं. 8 के रूप में फाइल की गई है ।

11. तत्पश्चात् याची ने 1993 का उक्त मूल आवेदन सं. 1852 फाइल किया था ।

12. यह उल्लेख किया जा सकता है कि वर्ष 1989 में याची के दक्षता रोध पार करने के मामले पर विचार किया गया था । तथापि, तारीख 27 अक्तूबर, 1989 को याची को दक्षता रोध पार करने के अयोग्य पाया गया था । तारीख 27 अक्तूबर, 1989 के आदेश की प्रति 2001 की उक्त सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 के उपाबंध सं. 10 के रूप में फाइल की गई है ।

13. याची ने तारीख 27 अक्तूबर, 1989 के उक्त आदेश के विरुद्ध, जिसमें याची की दक्षता रोध पार करने से इनकार किया गया था, 1993 का उक्त मूल आवेदन सं. 253 फाइल किया था ।

14. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि तारीख 12 अप्रैल, 2001 के आदेश द्वारा याची द्वारा उपर्युक्त फाइल किए गए दोनों मूल आवेदन केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा विनिश्चित किए गए थे । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने याची द्वारा फाइल किए गए उपर्युक्त मूल आवेदन खारिज कर दिया ।

15. हमने याची की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल और कुमारी महिमा मौर्या तथा प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया ।

16. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने यह दलील दी कि याची द्वारा लगभग 20 वर्षों की सेवा पूर्ण कर लेने के पश्चात् याची को अस्थायी कर्मचारी मानते हुए उसकी सेवाएं समाप्त करना अवैध था और इस संबंध में याची द्वारा फाइल किए गए मूल आवेदन को खारिज करते हुए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने गलती की थी । याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने यह भी दलील दी कि याची द्वारा की गई लंबी सेवा को ध्यान में रखते हुए याची सेवा में नियमित किए जाने की हकदार थी और उसे अस्थायी कर्मचारी मानते हुए उसकी सेवाएं समाप्त किए जाने वाला आदेश अवैध है ।

17. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **पुरुषोत्तम सिंह** बनाम **कलक्टर, हमीर पुर और अन्य**[1] ;

2. **शमशाद अहमद और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] ;

3. **एम. लिंगम्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य**[3] ।

18. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने यह दलील दी कि याची द्वारा अपनी सेवा समाप्त किए जाने के संबंध में फाइल की गई उक्त 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 मंजूर की जानी चाहिए और तारीख 12 अप्रैल, 2001 को केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा पारित किए गए आदेश को अभिखंडित किया जाना चाहिए ।

19. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने ऋजुतापूर्वक यह दलील दी कि उपरोक्त 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 में पारित आक्षेपित आदेश दक्षता रोध को पार करने से इनकार करने के संबंध में था और इसलिए उक्त 2001 की रिट याचिका सं. 25900 का परिणाम 2001 की उक्त सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 पर निर्भर करता है । उन्होंने यह भी दलील दी कि

---

[1] 2000 (85) एफ. एल. आर. 566 (इला.).
[2] 2000 (85) एफ. एल. आर. 592 (इला.).
[3] 2000 (85) एफ. एल. आर. 545.

याची द्वारा फाइल की गई 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25901 के असफल होने की स्थिति में 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25900 भी विफल हो जाएगी ।

20. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री रवि प्रकाश श्रीवास्तव ने यह दलील दी कि इस रिट याचिका की विषयवस्तु मात्र निलंबन ही नहीं है । इस मामले में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा दिए गए निदेशों के आधार पर याची को नियमित किए जाने पर विचार किया गया था । जब याची नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाई गई तभी याची की सेवाएं समाप्त की गई थीं ।

21. अब हम याची द्वारा अपनी सेवा समाप्त किए जाने के संबंध में फाइल की गई 2001 की उक्त सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 पर विचार करेंगे ।

22. उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि याची ने किसी भी स्तर पर यह दावा नहीं किया था कि वर्ष 1973 में उसकी नियुक्ति सुसंगत नियमों में उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी और यह एक नियमित नियुक्ति थी । याची ने आरंभ से ही यह दावा किया है कि लंबी अवधि तक की गई उसकी सेवा को ध्यान में रखते हुए उसकी सेवाएं नियमित की जानी चाहिए । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने 1987 में फाइल किए गए उक्त मूल आवेदन में तारीख 14 मार्च, 1991 को पारित आदेश में, तारीख 18 सितंबर, 1986 के सेवा समाप्ति के आदेश को अभिखंडित करते हुए याची की पुन: बहाली का निदेश दिया था और यह भी निदेश दिया था कि संघ लोक सेवा आयोग याची को नियमित करने के मामले में विचार करे । जब तारीख 14 मार्च, 1991 के आदेश के निदेशों के अनुक्रम में याची से लिखित परीक्षा में उपस्थित होने की वांछा की गई तब याची ने स्पष्टीकरण हेतु केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण में समावेदन किया था । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने यह स्पष्ट किया था कि नियमित करने के लिए लिखित परीक्षा या साक्षात्कार की आवश्यकता नहीं है और संघ लोक सेवा आयोग द्वारा नियमित करने की प्रक्रिया याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर पूरी की जाए ।

23. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा दिए गए उक्त स्पष्टीकरण के आधार पर संघ लोक सेवा आयोग ने याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर विचार किया और उसे नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाया । जैसाकि

ऊपर उल्लेख किया गया है, संघ लोक सेवा आयोग की सूचना की प्रति, 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25901 के साथ उपाबंध सं. 8 के रूप में फाइल की गई है ।

24. चूंकि याची को उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाया गया था इसलिए भारत के राष्ट्रपति ने तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश द्वारा याची की सेवाएं समाप्त कर दी थीं ।

25. याची ने अपने मूल आवेदन में अन्य बातों के साथ-साथ तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश को अभिखंडित करने और प्रत्यर्थियों को तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश की विधिमान्यता सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की गई वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को पेश करने का निदेश देने की प्रार्थना की थी । याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष पेश की गई थीं और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् अपने तारीख 12 अप्रैल, 2001 के आदेश द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला :–

> "7. हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए अभिलेख और वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह समाधान हो गया है कि सुसंगत अवधि की जब याची वास्तविक रूप से सेवा में थी याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें तभी लिखी गई थीं और संघ लोक सेवा आयोग द्वारा इनका परिशीलन किया गया था । उसके अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् ही सिफारिशें की गई थीं । यह सही नहीं है कि जैसाकि आवेदक द्वारा अभिकथित किया गया है कि प्रतिकूल प्रविष्टियों को संसूचित नहीं किया गया था । प्रतिकूल प्रविष्टियां, जो कि वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों, अभिलेखों के अनुसार संज्ञेय थीं, उसे संसूचित की गई थीं । परिणामस्वरूप, हमें तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई न्यायोचित कारण प्रतीत नहीं होता । अत: दोनों ही मूल आवेदन गुणदोष के आधार पर खारिज किए जाते हैं ।"

26. अत: यह प्रतीत होता है कि याची को नियमित किए जाने के मामले में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर विचार किया गया था तथा याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर

विचार करने के पश्चात् संघ लोक सेवा आयोग ने उसे नियमित करने के योग्य नहीं पाया । केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने अपने समक्ष प्रस्तुत की गई वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों पर विचार किया और संघ लोक सेवा आयोग द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की ।

27. अत: यह माना जा सकता है कि याची का वर्तमान मामला मात्र याची की सेवा समाप्ति का मामला नहीं था । याची के मामले पर विचार किया गया था और तत्पश्चात्, भारत के राष्ट्रपति ने तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश द्वारा याची की सेवाएं समाप्त की थीं तथा एक मास की सूचना के स्थान पर एक मास के वेतन और अन्य भत्तों का भुगतान करने का निदेश दिया था ।

28. अब हम याची के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों पर विचार करेंगे । **पुरुषोत्तम सिंह** बनाम **कलक्टर, हमीर पुर और अन्य**[1] वाले मामले में याची खान अधिकारी के कार्यालय में दैनिक मजदूरी के आधार पर चपरासी के रूप में कार्यरत था और उक्त मामले में याची को पांच वर्षों के पश्चात् निकाल दिया गया था जबकि उसी कार्यालय में दैनिक मजूदरी आधार पर कार्य कर रहे अन्य व्यक्ति कार्य करते रहे थे । इन परिस्थितियों में इस न्यायालय ने उक्त मामले के याची को कार्य करते रहने का और नियमितीकरण के मामले पर विचार करने का निदेश दिया था ।

29. इस मामले में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, याची को नियमित करने के मामले पर विचार किया गया था और याची को नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाया गया था । अत: **पुरुषोत्तम सिंह** बनाम **कलक्टर, हमीर पुर और अन्य**[1] वाले मामले के तथ्य इस मामले के तथ्यों से पूर्णतया भिन्न हैं ।

शमशाद अहमद और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में याचियों को वर्ष 1981-82 में तदर्थ आधार पर चौकीदार के रूप में नियुक्त किया गया था । याचियों को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना वर्ष 1986 में याचियों की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं । इन परिस्थितियों में याचियों की सेवाओं को समाप्त करने वाले आदेशों को अपास्त किया गया था और याचियों को पुन: स्थापित करने का निदेश दिया गया था तथा उनकी सेवाएं नियमित कर दी गई थीं ।

---

[1] 2000 (85) एफ. एल. आर. 566 (इला.).

[2] 2000 (85) एफ. एल. आर. 592 (इला.).

इस मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के आधार पर याची को नियमित किए जाने के लिए विचार किया गया था और संघ लोक सेवा आयोग ने उसे नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाया था । परिणामस्वरूप याची की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं । अत: इस मामले के तथ्य **शमशाद अहमद और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले के तथ्यों से भिन्न हैं ।

एम. लिंगम्मा बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य**[2] वाले मामले में याची तारीख 11 अगस्त, 1980 को सफाई कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था । आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के प्रबंध मंडल ने कोई सूचना जारी किए बिना याची को सेवा से उन्मोचित कर दिया था । उपरोक्त मामले में याची ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की थी, जिसका तारीख 29 अप्रैल, 1994 को निपटान करते हुए आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के प्रबंध मंडल को यह निदेश दिया गया कि वह याची को नियमित करने के मामले पर विचार करे । आंध्र प्रदेश राज्य परिवहन निगम के प्रबंध मंडल ने तारीख 1 सितंबर, 1998 के आदेश द्वारा इस आधार पर याची को नियमित करने से इनकार कर दिया कि याची के पास उक्त पद की आवश्यक योग्यता नहीं है ।

30. तत्पश्चात् याची ने उक्त मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की थी ।

31. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थियों को याची की सेवाएं नियमित करने का निदेश दिया था ।

32. **एम. लिंगम्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य**[2] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय स्पष्ट रूप से इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता, क्योंकि याची को नियमित करने के मामले पर संघ लोक सेवा आयोग द्वारा विचार किया गया था और याची नियमित किए जाने के योग्य नहीं पाई गई थी ।

33. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए हमें याची को नियमित किए जाने के योग्य न पाए जाने पर याची की सेवाएं समाप्त करने का निदेश देने वाले भारत के राष्ट्रपति के तारीख 29 अक्तूबर, 1993 के आदेश में कोई भी अवैधता या अनियमितता प्रतीत नहीं होती है ।

---

[1] 2000 (85) एफ. एल. आर. 592 (इला.).

[2] 2000 (85) एफ. एल. आर. 545.

34. यह उपदर्शित करने वाला अभिलेख ऐसा कुछ पेश नहीं किया गया है कि संघ लोक सेवा आयोग के विनिश्चय में जिसकी केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने भी तारीख 12 अप्रैल, 2001 के आदेश द्वारा पुष्टि की है, कोई अवैधता या अनियमितता है ।

35. हम केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा तारीख 12 अप्रैल, 2001 के आदेश के पैरा 7 में किए गए संप्रेक्षण से, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, सहमत हैं ।

36. याची द्वारा फाइल की गई उपर्युक्त 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 में कोई भी बल प्रतीत नहीं होता है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है ।

37. जहां तक उपर्युक्त 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 का संबंध है, याची की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पी. अग्रवाल ने जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, ऋजुतापूर्वक यह दलील दी है कि ऊपर वर्णित 2001 की रिट याचिका सं. 25901 के निष्फल होने पर 2001 की उक्त रिट याचिका सं. 25900 विफल हो जाती है ।

38. उपरोक्त को देखते हुए, ऊपर वर्णित 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25900 विफल हो जाने के कारण खारिज किए जाने योग्य है ।

39. उपरोक्त चर्चा के आधार पर ऊपर वर्णित 2001 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 25901 खारिज की जाती है ।

40. परिणामस्वरूप उपरोक्त 2001 की सिविल रिट याचिका सं. 25900 विफल हो जाने के कारण खारिज की जाती है ।

41. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं ।

भट./मह.

जवाहर लाल शुक्ला

बनाम

मुख्य चिकित्सा अधीक्षक, मैनपुरी और अन्य

तारीख 31 जनवरी, 2011

न्यायमूर्ति अरुण टण्डन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – दंत हाइजिनिस्ट के रूप में नियुक्ति – प्रशिक्षण की अपेक्षा – याची को नियमों के अनुसार प्रशिक्षण प्राप्त करने का निदेश दिया जाना – याची द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त करने के बजाय लिखा-पढ़ी करना – प्रोन्नति के लिए न्यायालय से परमादेश रिट जारी करने की अपेक्षा – चूंकि याची ने प्रशिक्षण प्राप्त न करने के कारण नियमों द्वारा विहित न्यूनतम अर्हता पूरी नहीं की अतः उसके हक में परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती ।

ये दोनों रिट याचिकाएं एक ही याचिकाकर्ता द्वारा फाइल की गई हैं जिनमें एक जैसा अनुतोष मांगा गया है । दोनों याचिकाओं को इस एक ही आदेश द्वारा विनिश्चित किया जा रहा है । रिट याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय द्वारा यह पूछे जाने पर कि जब याची के पास दंत हाइजिनिस्ट के प्रशिक्षण की न्यूनतम विहित अर्हता नहीं थी तो उसे किस प्रकार किसी पद पर नियुक्त किया जा सका, याची के काउंसेल इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके । उनके द्वारा यह कहा गया कि चूंकि निदेशक के पत्र के अधीन याची की नियुक्ति की गई थी इसलिए इसे वैध माना जाए । ये दलीलें न्यायालय को स्वीकार नहीं हैं । राज्य के सभी अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे कानूनी उपबंधों का पालन करें और यह सुनिश्चित करें कि उम्मीदवारों की नियुक्ति पूर्णतः लागू नियमों के अनुसार की जाए और जो व्यक्ति पद की न्यूनतम विहित अर्हता धारित करता है उसे ही विहित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् नियुक्त किया जाए, अन्यथा नहीं । इस याचिका के अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि याची से तारीख 25 जून, 1988 के पत्र द्वारा दंत हाइजिनिस्ट के प्रशिक्षण की अपेक्षा की गई थी जिसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंधित किया गया था कि याची एक वर्ष के प्रशिक्षण के लिए मेडिकल कालेज,

आगरा में रिपोर्ट करे । याची ने समय पर जवाब नहीं दिया और इसलिए मेडिकल कालेज, आगरा के प्रधानाचार्या ने अपने तारीख 7 नवंबर, 1988 के पत्र द्वारा प्राधिकारियों को यह सूचित किया कि दंत हाइजिनिस्टों का प्रशिक्षण जून, 1988 से प्रारंभ हो गया था तथा 5 स्वीकृत पदों के विरुद्ध पांच व्यक्तियों को पहले ही नियुक्त कर दिया गया है । इस स्तर पर याची को आज्ञा प्रदत्त करने से अन्य व्यक्तियों के प्रशिक्षण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा । इसके पश्चात् याची ने पांच वर्षों तक कोई कार्रवाई नहीं की तथा यह कहा गया है कि उसके पश्चात् वह अभ्यावेदन देने में लगा रहा । याची ने पांच वर्षों के पश्चात् वर्ष 1993 में इस न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की है जिसमें उसने प्रत्यर्थियों को प्रशिक्षण पूर्ण करने के लिए निदेश जारी करने के लिए परमादेश रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया है और यह रिट याचिका अर्थात् आज की तारीख तक अर्थात् 18 वर्षों तक लंबित रही है । याची को प्रशिक्षण पूर्ण करने की अनुमति देने का कोई भी आदेश किसी भी स्तर पर पारित नहीं किया गया है । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि याची अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में कार्य करता रहा है । उससे सेवानिवृत्ति की तारीख तक आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं की गई है, जो कि सरकारी सेवा में दंत हाइजिनिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए एक आवश्यक शर्त है । जहां तक याची द्वारा निर्दिष्ट किए गए नियमितीकरण के नियमों का संबंध है, यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि उस पर ये नियम लागू नहीं होते क्योंकि उसे पद पर प्रोन्नत नहीं किया गया था । यह एक सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति का मामला है और इसलिए ऊपर निर्दिष्ट 1989 के नियमों के उपबंध लागू नहीं होंगे । 1988 के नियमों के अधीन केवल वही उम्मीदवार नियमित किए जाने का हकदार है जिसको 1988 के नियमों में लागू किए जाने के लिए वर्णित तारीख से पूर्व नियुक्त किया गया हो और वह नियुक्ति की तारीख को न्यूनतम विहित अर्हता धारित करता हो । ऊपर उल्लेख किया गया है कि याची उस पद की न्यूनतम विहित अर्हता धारित नहीं करता था, इसी कारण से उसे अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था । याची को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता । दोनों रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं । अंतरिम आदेश निर्मोचित किया जाता है । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19 और 20)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता	**:**	**2002 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 51115 और 1993**

की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 27080.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिकाएं ।

याची की ओर से श्री प्रदीप चन्द्र

प्रत्यर्थी की ओर से स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति अरुण टण्डन – ये दोनों रिट याचिकाएं एक ही याचिकाकर्ता द्वारा फाइल की गई हैं जिनमें एक जैसा अनुतोष मांगा गया है । दोनों याचिकाओं को इस एक ही आदेश द्वारा विनिश्चित किया जा रहा है ।

2. इस न्यायालय के समक्ष याची ने दावा किया है कि उसे मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मैनपुरी के तारीख 25 मई, 1999 के आदेश (जो संशोधन आवेदन के समर्थन में फाइल शपथपत्र के उपाबंध 1 के रूप में संलग्न है और जिसे पहले ही स्वीकार किया जा चुका है) द्वारा अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट (अनट्रेन्ड डेंटल हाइजिनिस्ट) के पद पर नियुक्त किया गया था ।

3. यह दलील दी गई है कि याची कई वर्षों तक लगातार अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में कार्यरत रहा और अंततः वर्ष 1988 में राज्य सरकार ने अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्टों को प्रशिक्षण के लिए इस शर्त के साथ नीति बनाई कि ऐसे अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट को पांच वर्षों की सेवा पूर्ण करनी चाहिए । याची के अनुसार उसको मिलाकर तीन व्यक्तियों को इस प्रशिक्षण के लिए चयनित किया गया था । तथापि, उसे विहित तारीख के दो मासों के पश्चात् प्रशिक्षण महाविद्यालय में उपस्थित होने के कारण प्रवेश देने से इनकार कर दिया गया था ।

4. अतः याची ने इस न्यायालय के समक्ष 1993 की रिट याचिका सं. 27080 फाइल करते हुए यह प्रार्थना की कि उसे दंत हाइजिनिस्ट के पद का प्रशिक्षण पूर्ण कराने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश दिया जाए । रिट याचिका में कोई भी अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया था और केवल प्रति-शपथपत्र ही मांगा गया था । रिट याचिका लंबित है और आज न्यायालय द्वारा उसे विनिश्चित किया जा रहा है ।

5. तथ्यों का उल्लेख करने के लिए यह कहा जा सकता है कि याची ने उक्त रिट याचिका फाइल करने के 9 वर्षों के पश्चात् दूसरी रिट

याचिका फाइल की जो 2002 की रिट याचिका सं. 51115 है जिसमें प्रत्यर्थियों को सितंबर और अक्तूबर, 2002 मासों का वेतन, जब वह देय हुआ था, देने के लिए परमादेश रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया गया है । वर्ष 2009 में अर्थात् 7 वर्षों के पश्चात् रिट फाइल करके याची ने यह अनुरोध किया कि प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 4 सितंबर, 2002 को पारित आदेश अभिखंडित किया जाए । तारीख 4 सितंबर, 2002 का आदेश रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है जिसमें याची को वार्ड ब्याय के रूप में संबोधित करते हुए यह सूचित किया गया था कि तारीख 1 सितंबर, 2002 से 25 सितंबर, 2002 तक का उसका वेतन जारी नहीं किया गया है क्योंकि वह बिना आवेदन दिए अवकाश पर रहा था । याची ने संशोधन आवेदन फाइल करके यह भी प्रार्थना की थी कि प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे उसे अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट मानते हुए तद्नुसार वेतन का भुगतान करें ।

6. तारीख 21 दिसंबर, 2002 को इस न्यायालय द्वारा एक आदेश पारित किया गया था कि याची से दंत हाइजिनिस्ट का पदभार सौंपने के लिए नहीं कहा जाए और यदि वह उस रूप में ही कार्यरत रहेगा तो उसे नियमित रूप से वेतन मिलता रहेगा । याची ने अंतरिम आदेश के आधार पर दंत हाइजिनिस्ट के रूप में कार्यरत रहने और वेतन का भुगतान करने का दावा किया है ।

7. आज यह बताया गया है कि याची आज सेवानिवृत्त होने वाला है ।

8. याची के काउंसेलों ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे उसे दंत हाइजिनिस्ट मानते हुए उसकी पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति फायदे नियत करें । अन्य व्यावहारिक प्रयोजनों के कारण यह रिट याचिका विफल हो गई है । न्यायालय को सूचित किया गया है कि याची उत्तर प्रदेश तदर्थ नियुक्ति (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के अधिकार में न आने वाले पदों पर) नियमितीकरण नियम, 1989 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1989 के नियम" कहा गया है) के अधीन नियमित किए जाने का हकदार बन चुका है ।

9. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और रिट याचिका के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

10. याची के पक्ष में जारी किया गया नियुक्ति पत्र संशोधन आवेदन

के साथ संलग्न किया गया है और यह पढ़ने में रुचिकर है । आदेश में यह अभिलिखित किया गया है कि याची का नाम स्थानीय रोजगार कार्यालय से प्राप्त की गई सूची में क्रम सं. 39 पर उल्लिखित है और निदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के तारीख 6 अप्रैल, 1979 के पत्र में यह निदेश दिया गया है कि चूंकि याची दंत हाइजिनिस्ट के रूप में प्रशिक्षित नहीं है इसलिए उसे पूर्णतया अस्थायी आधार पर अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में नियुक्ति के लिए प्रस्तावित किया जा सकता है और जैसे ही कोई प्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट सेवा ग्रहण करेगा याची की सेवाएं स्वतः समाप्त मानी जाएंगी ।

11. उसी नियुक्ति के निर्देश में याची का कई दशकों से दावा चल रहा है ।

12. इस न्यायालय द्वारा यह पूछे जाने पर कि जब याची के पास दंत हाइजिनिस्ट के प्रशिक्षण की न्यूनतम विहित अर्हता नहीं थी तो उसे किस प्रकार किसी पद पर नियुक्त किया जा सका, याची के काउंसेल इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके । उनके द्वारा यह कहा गया कि चूंकि निदेशक के पत्र के अधीन याची की नियुक्ति की गई थी इसलिए इसे वैध माना जाए ।

13. ये दलीलें न्यायालय को स्वीकार नहीं हैं । राज्य के सभी अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे कानूनी उपबंधों का पालन करें और यह सुनिश्चित करें कि उम्मीदवारों की नियुक्ति पूर्णतः लागू नियमों के अनुसार की जाए और जो व्यक्ति पद की न्यूनतम विहित अर्हता धारित करता है उसे ही विहित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् नियुक्त किया जाए, अन्यथा नहीं ।

14. इस याचिका के अभिलेख से यह भी स्पष्ट होता है कि याची से तारीख 25 जून, 1988 के पत्र द्वारा दंत हाइजिनिस्ट के प्रशिक्षण की अपेक्षा की गई थी जिसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबंधित किया गया था कि याची एक वर्ष के प्रशिक्षण के लिए मेडिकल कालेज, आगरा में रिपोर्ट करे । याची ने समय पर जवाब नहीं दिया और इसलिए मेडिकल कालेज, आगरा के प्रधानाचार्या ने अपने तारीख 7 नवंबर, 1988 के पत्र द्वारा प्राधिकारियों को यह सूचित किया कि दंत हाइजिनिस्टों का प्रशिक्षण जून, 1988 से प्रारंभ हो गया था तथा 5 स्वीकृत पदों के विरुद्ध पांच व्यक्तियों को पहले ही नियुक्त कर दिया गया है । इस स्तर पर याची को आज्ञा प्रदत्त करने से अन्य व्यक्तियों के प्रशिक्षण पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा ।

15. इसके पश्चात् याची ने पांच वर्षों तक कोई कार्रवाई नहीं की तथा यह कहा गया है कि उसके पश्चात् वह अभ्यावेदन देने में लगा रहा ।

16. याची ने पांच वर्षों के पश्चात् वर्ष 1993 में इस न्यायालय में रिट याचिका प्रस्तुत की है जिसमें उसने प्रत्यर्थियों को प्रशिक्षण पूर्ण करने के लिए निदेश जारी करने के लिए परमादेश रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया है और यह रिट याचिका आज की तारीख तक अर्थात् 18 वर्षों तक लंबित रही है । याची को प्रशिक्षण पूर्ण करने की अनुमति देने का कोई भी आदेश किसी भी स्तर पर पारित नहीं किया गया है ।

17. इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि याची अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में कार्य करता रहा है । उसने सेवानिवृत्ति की तारीख तक आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं की है, जो कि सरकारी सेवा में दंत हाइजिनिस्ट के पद पर नियुक्ति के लिए एक आवश्यक शर्त है ।

18. जहां तक याची द्वारा निर्दिष्ट किए गए नियमितीकरण के नियमों का संबंध है, यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि वह उस पर नियम लागू नहीं होते क्योंकि पद पर प्रोन्नत नहीं किया गया था । यह एक सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति का मामला है और इसलिए ऊपर निर्दिष्ट 1989 के नियमों के उपबंध लागू नहीं होंगे ।

19. 1988 के नियमों के अधीन केवल वही उम्मीदवार नियमित किए जाने का हकदार है जिसको 1988 के नियमों में लागू किए जाने के लिए वर्णित तारीख से पूर्व नियुक्त किया गया हो और वह नियुक्ति की तारीख को न्यूनतम विहित अर्हता धारित करता हो । ऊपर उल्लेख किया गया है कि याची उस पद की न्यूनतम विहित अर्हता धारित नहीं करता था, इसी कारण से उसे अप्रशिक्षित दंत हाइजिनिस्ट के रूप में नियुक्त किया गया था ।

20. याची को कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता । दोनों रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं । अंतरिम आदेश निर्मोचित किया जाता है ।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं ।

भट./मह.

अजय शंकर सिंह

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 5 दिसम्बर, 2011

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी और न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – याची को सरकारी महिला पालिटेक्निक की दीवार के निर्माण का कार्य सौंपा जाना – याची द्वारा मानकों और विशिष्टियों की उपेक्षा करते हुए अपनी मर्जी से दीवार का निर्माण करना – दीवार गिर जाने पर प्रतिकूल प्रविष्टि और नुकसान की 75 प्रतिशत धनराशि की वसूली का मामूली दंड दिया जाना – अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका फाइल करके आदेश को चुनौती – चूंकि याची के प्रति उदार मत अपनाकर मामूली दंड दिया गया है अतः ऐसे आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

इस रिट याचिका द्वारा, याची ने प्रत्यर्थी सं. 1 सचिव, लोक निर्माण विभाग, अनुभाग-VI, यू.पी., लखनऊ द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2002 को पारित उस आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने का अनुरोध किया है जिसके द्वारा राज्य सरकार को हुए वित्तीय नुकसान के रूप में याची के विरुद्ध प्रतिकूल प्रविष्टि की शास्ति और 13,000/- रुपए की 75 प्रतिशत वसूली अर्थात् 9,750/- रुपए की वसूली के लिए आदेश पारित किया गया है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह साबित होता है कि याची ने रेखाचित्र और विशिष्टियों के अनुसार निर्माण नहीं कराया था और उसने निर्माण कार्य के अनुभव और अनभिज्ञता का आश्रय लिया था । याची को एक अर्हित सहायक इंजीनियर होन के कारण निर्माण कार्य के बारे में जानकारी होनी चाहिए थी जो उसके कार्य की अपेक्षा थी । कार्य में अभिकथित अनुभव को वह बचाव के रूप में नहीं ले सकता क्योंकि उसने यह स्वीकार किया है कि उसे विभाग में निर्माण कार्य का दो वर्ष का अनुभव था । उसे केवल रेखाचित्र और विशिष्टियों के अनुसार एक सीधी दीवार की अपेक्षित मोटाई और ऊंचाई के निर्माण पर ध्यान देना था । वह केवल प्रधानाचार्य के अनुरोध पर तकनीकी

परामर्श और अपने ज्येष्ठ अधिकारी के अनुमोदन के बिना दीवार की मोटाई और ऊंचाई में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता था । याची महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के अनुरोध के बारे में अपने वरिष्ठ को जानकारी देने की अपनी ड्यूटी में असफल रहा है और उसने अपनी इच्छा से निर्माण कार्य किया । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि दीवार की ऊंचाई बढ़ाने और कांटेदार तार लगाने पर बजट पर प्रभाव पड़ने के कारण सरकार द्वारा मंजूरी ली जानी अपेक्षित है । याची ने स्वयं अपनी मर्जी से दीवार की मोटाई कम की, इसकी ऊंचाई बढ़ाई जिसके द्वारा ढांचा अस्थिर होने के कारण ढांचे का मानक बदल गया और सरकार को हानि हुई । प्रत्यर्थी सं. 1 ने याची के विरुद्ध पहले से ही उदार मत लिया है और केवल प्रतिकूल प्रविष्टि करके मामूली दण्ड दिया है और उसकी लापरवाही के कारण उसके द्वारा सरकार को पहुंची 13,000/- रुपए की हानि के 75 प्रतिशत के बराबर धनराशि अर्थात् 9,750/- रुपए दंड दिया है । हमारी सुविचारित राय में आक्षेपित आदेश किसी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है इसलिए इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति का प्रयोग करके कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 11 और 13)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण याचिका रिट अधिकारिता : 2002 की सिविल प्रकीर्ण रिट सं. 45202.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री प्रकाश पडिया और सुनील कुमार तिवारी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बी. एन. सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा ने दिया ।

न्या. सिन्हा – याची विद्वान् काउंसेल श्री प्रकाश पडिया के पक्षपत्र धारक श्री सुनील कुमार तिवारी, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं. 1, 2 और 4 की ओर विद्वान् स्थायी काउंसेल तथा प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री बी. एन. सिंह को सुना ।

2. पक्षकारों के बीच प्रत्युत्तर शपथपत्रों का आदान प्रदान किया गया है ।

3. इस रिट याचिका द्वारा, याची ने प्रत्यर्थी सं. 1 सचिव, लोक निर्माण विभाग, अनुभाग-VI, यू.पी., लखनऊ द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2002 को पारित उस आक्षेपित आदेश को अभिखंडित करने का अनुरोध किया है जिसके द्वारा राज्य सरकार को हुए वित्तीय नुकसान के रूप में याची के विरुद्ध प्रतिकूल प्रविष्टि की शास्ति और 13,000/- रुपए की 75 प्रतिशत वसूली अर्थात् 9,750/- रुपए की वसूली के लिए आदेश पारित किया गया है ।

4. वर्तमान रिट याचिका से संबंधित संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची, जो प्रान्तीय मंडल, लोक निर्माण विभाग, कौशाम्बी में सहायक इंजीनियर के रूप में कार्य कर रहा है, तारीख 3 फरवरी, 1990 को सुलतानपुर में तैनात था । तारीख 1 अप्रैल, 1991 से 30 जून, 1994 तक उसकी सेवा काल के दौरान जब वह सुलतानपुर में सहायक इंजीनियर के रूप कार्य कर रहा था, उसे विश्व बैंक की तकनीकी शिक्षा परियोजना के अधीन सरकारी महिला पालिटेक्निक, अमेठी, जिला सुलतानपुर में सीमा दीवार के निर्माण का कार्य सौंपा गया था । विशिष्टियों के अनुसार निर्माण न करने के कारण दीवार का एक भाग गिर गया ।

5. तारीख 30 जून, 1996 को संबंधित प्राधिकारी ने कार्य स्थल पर जाकर निरीक्षण किया और यह पाया कि याची द्वारा किए गए कार्य से राज्य सरकार को 13,000/- रुपए की हानि हुई है ।

6. याची को तारीख 10 फरवरी, 1997 के आदेश द्वारा तुरन्त प्रभाव से सेवा से निलंबित कर दिया गया । तथापि, याची ने तारीख 24 फरवरी, 1997 को एक आवेदन दिया, जिस पर तारीख 5 जून, 1997 के आदेश द्वारा याची का निलंबन रद्द कर दिया गया । तारीख 21 अगस्त, 1997 को याची पर एक आरोप पत्र की तामील की गई थी जो इस प्रकार है :–

> "आरोप संख्या-1
>
> विश्व बैंक पोषित टेक्नीकल एजूकेशन प्रोजेक्ट के अंतर्गत राजकीय महिला पालिटेक्निक अमेठी, सुलतानपुर छात्रावास की बाउण्ड्रीवाल का निर्माण इनके द्वारा सी. वी. नं. 16/एसई-40/91-92 दिनांक 16.11.91 के अंतर्गत कराया गया । प्रधानाचार्य महिला पालिटेक्निक अमेठी सुलतानपुर के निदेशक प्राविधिक शिक्षा उ.प्र., कानपुर को सम्बोधित पत्र संख्या-642-43/छात्रावास/96-97 दिनांक

4.7.96 के द्वारा छात्रावास की बाउण्ड्रीवाल दिनांक 30.6.96 को सायं लगभग 4.00 बजे गिरने की सूचना दी गई । प्राविधिक परीक्षक के द्वारा दिनांक 11.12.96 को कार्य की जांच के लिए निरीक्षण के समय पाया गया कि 15.43 मीटर लम्बाई में बाउण्ड्रीवाल क्षतिग्रस्त हुई है । शेष 4.85 मीटर की बाउण्ड्रीवाल निरीक्षक के समय कार्य स्थल पर 11.55 सेमी. मोटी एवं 3.55 मीटर ऊंची पाई गई । छात्रावास की कोर्टयार्डवाल परिकल्पना ड्राइंग में निर्धारित मोटाई 23 सेमी. के स्थान पर 11.5 सेमी. मोटाई में निर्मित की गई एवं परिकल्पना ड्राइंग में निर्धारित ऊंचाई 2.1 मीटर के स्थान पर 3.55 मीटर ऊंचाई में निर्मित की गई । इनके द्वारा कार्य निर्धारित ड्राइंग के अनुसार न कराए जाने के कारण बाउण्ड्रीवाल क्षतिग्रस्त हो गई । उपरोक्त अनियमितताओं से विभाग की छवि धूमिल हुई और शासन को 13,000/- रुपए की हानि हुई ।"

7. याची ने तारीख 30 दिसम्बर, 1997 के आरोप पत्र के प्रत्युत्तर में अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी है कि सरकारी महिला पालिटेक्निक, अमेठी, जिला सुलतानपुर के प्रधानाचार्य ने अपने तारीख 15 मई, 1993 के पत्र द्वारा यह अनुरोध किया था कि या तो 4 फुट ऊंची की सीमा दीवार बनाई जाए या इसके ऊपर लोहे/तारों की बाड़ लगाई जाए । याची ने अपने पक्षकथन के समर्थन में जांच में तारीख 15 जून, 1998 को स्वयं अपनी परीक्षा कराई और उसकी प्रतिपरीक्षा की गई थी ।

8. तारीख 28 अगस्त, 2002 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची के विरुद्ध प्रतिकूल प्रविष्टि करने और 13,000/- रुपए का 75 प्रतिशत अर्थात् 9,750/- रुपए की वसूली करने का अधिनिर्णय किया गया ।

9. याची के काउंसेल ने यह दलील दी है कि सरकारी महिला पालिटेक्निक की सीमा दीवार का भाग प्राकृतिक विपत्ति के कारण गिर गया था और इसलिए इसमें याची की गलती नहीं थी । यह कहा गया है कि हानि जो राज्य सरकार ने बताई है, का कारण ईश्वर कृत्य था, जिसके लिए याची को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता और इसलिए, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा तारीख 26 अगस्त, 2002 को पारित आक्षेपित आदेश विधिविरुद्ध और मनमाना है और अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

10. दूसरी ओर, विद्वान् स्थायी काउंसेल ने यह दलील दी कि याची

लोक निर्माण विभाग में जिला सुलतानपुर में सहायक इंजीनियर था और उसने इस रूप में सीमा दीवार का विहित रेखाचित्र और विशिष्टियों के अनुसार निर्माण नहीं कराया है । यह दलील दी गई है कि निरीक्षण में तकनीकी इंजीनियर ने दीवार की मोटाई और ऊंचाई में फेरफार पाया था । यह पाया कि दीवार की मोटाई 23 सेमी. के स्थान पर 11.5 सेमी. थी और इसकी ऊंचाई 2.1 मीटर के स्थान पर 3.5 मीटर थी । याची ने तारीख 15 जून, 1998 की जांच कार्यवाही में यह स्वीकार किया कि उसने विभाग में केवल दो वर्ष की सेवा की थी इसलिए उसे निर्माण का पर्याप्त अनुभव नहीं था । जांच कार्यवाही में याची की स्वीकृति का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

> ".....इस ऊंचाई को बढ़ाने के लिए दूसरे विकल्प अर्थात् कटीले तार एवं एंगिल आयरन पर विचार नहीं किया चूंकि मेरी सेवाएं 2 वर्ष की विभाग में थी अतः विभागीय कार्यवाही की अधि-अभिव ने न तो मौखिक रूप हुए वार्तालाप को करने की बात कही क्योंकि मुझे यह जानकारी ही नहीं थी कि यदि कोई उच्चाधिकारी कार्य कराने को कहता है उसे कन्फर्म भी कराया जाता है ।
>
> फील्ड का अनुभव न होने के कारण बाउन्ड्रीवाल की ऊंचाई बढ़ाए जाने के कारण वायु दबाव के कारण इसकी ड्राइंग नहीं की गई क्योंकि ऐसे कार्यों का न तो मुझे अनुभव है तो न ही किसी ने इसके लिए इंगित ही किया क्योंकि इस भवन का निरीक्षण अधिअभिव एवं अधीक्षण अभियन्ता द्वारा कई बार किया गया ।"

11. याची के काउंसेल के अनुसार, उपर्युक्त से यह साबित होता है कि याची ने रेखाचित्र और विशिष्टियों के अनुसार निर्माण नहीं कराया था और उसने निर्माण कार्य के अनुभव और अनभिज्ञता का आश्रय लिया था ।

12. पक्षकारों द्वारा किसी दूसरे मुद्दे पर दलील नहीं दी है ।

13. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात्, हमारा यह मत है कि याची को एक अर्हित सहायक इंजीनियर होने के कारण निर्माण कार्य के बारे में जानकारी होनी चाहिए थी जो उसके कार्य की अपेक्षा थी । कार्य में अभिकथित अनुभव को वह बचाव के रूप में नहीं ले सकता क्योंकि उसने यह स्वीकार किया है कि उसे विभाग में निर्माण कार्य का दो वर्ष का अनुभव था । उसे केवल रेखाचित्र

और विशिष्टियों के अनुसार एक सीधी दीवार की अपेक्षित मोटाई और ऊंचाई के निर्माण पर ध्यान देना था । वह केवल प्रधानाचार्य के अनुरोध पर तकनीकी परामर्श और अपने ज्येष्ठ अधिकारी के अनुमोदन के बिना दीवार की मोटाई और ऊंचाई में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता था । याची महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के अनुरोध के बारे में अपने वरिष्ठ को जानकारी देने की अपनी ड्यूटी में असफल रहा है और उसने अपनी इच्छा से निर्माण कार्य किया । यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि दीवार की ऊंचाई बढ़ाने और कांटेदार तार लगाने पर बजट पर प्रभाव पड़ने के कारण सरकार द्वारा मंजूरी ली जानी अपेक्षित है । याची ने स्वयं अपनी मर्जी से दीवार की मोटाई कम की, इसकी ऊंचाई बढ़ाई जिसके द्वारा ढांचा अस्थिर होने के कारण ढांचे का मानक बदल गया और सरकार को हानि हुई । प्रत्यर्थी सं. 1 ने याची के विरुद्ध पहले से ही उदार मत लिया है और केवल प्रतिकूल प्रविष्टि करके मामूली दण्ड दिया है और उसकी लापरवाही के कारण उसके द्वारा सरकार को पहुंची 13,000/- रुपए की हानि के 75 प्रतिशत के बराबर धनराशि अर्थात् 9,750/- रुपए दंड दिया है । हमारी सुविचारित राय में आक्षेपित आदेश किसी अवैधता और दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है इसलिए इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति का प्रयोग करके कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

14. तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है और अंतरिम आदेश को रद्द किया जाता है ।

15. खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

अनीता और अन्य

तारीख 29 फरवरी, 2012

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 149 और 163-क – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – जहां बीमा पालिसी की शर्तों का उल्लंघन हुआ हो वहां भी बीमा कंपनी अपने दायित्व से नहीं बच सकती – तथापि, कंपनी संदत्त की गई रकम बीमाकृत व्यक्ति से निष्पादन कार्यवाहियों में वसूल कर सकती है ।

मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन वर्तमान अपील बीमा कंपनी द्वारा मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बुलंदशहर द्वारा तारीख 25 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीतऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो । उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है, उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है । अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है,

सही और विधिमान्य हैं । अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है । आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करें और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करें । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे । (पैरा 27, 28, 37, 45, 46 और 47)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य** ;	44
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य** ;	29,36
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त** ;	29,34,36
[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य** ;	43
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा** ;	21, 40

[2004]	[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 : **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** ;	29,32,34, 35,36
[2004]	2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य** ;	21,39
[1998]	ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य** ।	29,30

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 3135.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजीव चड्ढा

दावेदारों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा ने दिया ।

न्या. महरोत्रा – यह प्रतीत होता है कि तारीख 7 जून, 2007 को प्रातः 9.00 बजे दुर्घटना घटित होने से संजय की मृत्यु हो जाने के कारण, उसकी विधवा पत्नी श्रीमती अनीता ने 2007 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 313 फाइल किया था जबकि संजय के माता-पिता अर्थात् श्रीमती कृष्णा शर्मा और राम निवास शर्मा ने 2008 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 79 फाइल किया था ।

2. दोनों दावा मामलों में पृथक्-पृथक् साक्ष्य अभिलिखित किए गए । तथापि, उक्त श्रीमती अनीता (2007 का मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 313 में याची) ने दोनों मामलों को समेकित करने के लिए एक आवेदन दिया था जिसपर तारीख 11 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा दोनों दावा मामलों को समेकित कर दिया गया और 2007 का मोटर दुर्घटना मामला सं. 313 लीडिंग मामला रखा गया ।

3. दोनों, दावा मामलों को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, बुलंदशहर द्वारा तारीख 25 जुलाई, 2011 को एक सामान्य निर्णय और आदेश/ अधिनिर्णय पारित करके विनिश्चित किया गया ।

4. वर्तमान अपील तारीख 25 जुलाई, 2011 के निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय जहां तक यह उपर्युक्त 2007 के मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 313 से संबंधित है, के विरुद्ध मोटर दुर्घटना अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है ।

5. दावा याचिका में यह पक्षकथन किया गया है कि तारीख 7 जून, 2007 को, उक्त संजय अपनी मोटर साइकिल जिसका रजिस्ट्रेशन सं. यू पी 81 क्यू 8013 है, से अलीगढ़ जा रहा था ; जब वह उक्त मोटर साइकिल से लगभग 9.00 बजे प्रातः गांव भरतारी के नजदीक जी. टी. रोड पर स्थित पेट्रोल पम्प के पास पंहुचा, तो एक ट्रक ने जिसका रजिस्ट्रेशन सं. एच आर 55 ए 1943 है (जिसे इसमें इसके पश्चात् प्रश्नगत "यान" कहा गया है) चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण पीछे से आकर उक्त मोटर साइकिल को टक्कर मारी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त संजय को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और उसकी उसी दिन जे. एन. मेडिकल कालेज, अलीगढ़ में उपचार के दौरान मृत्यु हो गई ।

6. दिनेश पासवान (हमारे समक्ष का प्रत्यर्थी सं. 2) प्रश्नगत यान का चालक था जबकि श्रीमती बलजीत कौर (हमारे समक्ष की प्रत्यर्थी सं. 3) प्रश्नगत यान की स्वामी थी । अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रश्नगत यान की बीमाकर्ता थी । हमारे समक्ष की प्रत्यर्थी सं. 4 उपर्युक्त मोटर साइकिल की बीमाकर्ता थी ।

7. पर्याप्त तामील के बावजूद, प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 ने कोई लिखित अभिकथन फाइल नहीं किया, और मामले में कार्यवाही करते हुए तारीख 14 अक्तूबर, 2009 को आदेश द्वारा उनके विरुद्ध एक-पक्षीय कार्यवाही की गई ।

8. प्रत्यर्थी सं. 4 ने उपरोक्त दोनों दावा मामलों में पृथक्-पृथक् लिखित अभिकथन फाइल किए ।

9. अपीलार्थी-बीमा कंपनी ने भी उपरोक्त दोनों दावा मामलों में पृथक्-पृथक् लिखित अभिकथन फाइल किए ।

10. पक्षकारों के बीच अभिवचनों के आदान-प्रदान के पश्चात्, अधिकरण ने उक्त दोनों मामलों में पृथक्-पृथक् विवाद्यक विरचित किए ।

11. उक्त दोनों मामलों में पृथक् रूप से साक्ष्य पेश किए गए ।

12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उक्त दोनों मामलों को तारीख 11 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा संयोजित कर दिया गया था और तत्पश्चात्, अधिकरण ने तारीख 25 जुलाई, 2011 के अपने सामान्य आदेश/अधिनिर्णय द्वारा उक्त दोनों दावा मामलों का विनिश्चय किया ।

13. अधिकरण ने अभिलेख पर पेश की गई सामग्री पर विचार करते हुए, अनेकों विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए ।

14. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण प्रश्नगत दुर्घटना हुई जिसके कारण उक्त संजय को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई ।

15. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उक्त संजय (उपर्युक्त मोटर साइकिल के चालक) की ओर से कोई उपेक्षा सिद्ध नहीं हुई है ।

16. अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से बीमाकृत था । तथापि, प्रश्नगत यान के चालक के पास कोई चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी या उसकी छाया प्रति अभिलेख पर पेश नहीं की गई और इस प्रकार यह उपधारणा की गई कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा था ।

17. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 25 जुलाई, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/अधिनिर्णय पारित किया, जिसमें उसने अन्य बातों के साथ-साथ दोनों दावा मामलों में संयुक्त रूप से दावेदारों को दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित 4,17,500/- रुपए प्रतिकर की धनराशि अधिनिर्णीत की ।

18. तथापि, अधिकरण द्वारा ऊपर अभिलिखित उपर्युक्त इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा था, अधिकरण ने यह निदेश दिया कि प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को संदत्त करनी होगी और इसके

पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

19. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

20. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा ने यह दलील दी कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी बीमा कंपनी को निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

21. श्री राजीव चड्ढा ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 3 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके । श्री राजीव चड्ढा ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] ;

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[2] ।

22. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

23. जहां तक श्री राजीव चड्ढा द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

24. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उपधारा (5)

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

इस प्रकार है :–

"147. **पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं** – (1) से (4).....

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

25. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

26. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित रूप में उपबंधित है :–

"149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य** – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) (या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है) ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगा खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी

अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीतऋणी हो ।

(2) से (7).....।"

27. उपर्युक्त उद्धृत उपबन्ध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीतऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

28. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश में जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है, उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

29. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] ;

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] ;

3. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3] ;

4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[4] ।

30. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चैक का आदरण नहीं हुआ था ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

31. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

32. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –
>
> (i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए यह एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) कोई बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा (2)(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) वहां भी जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को)

उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व से बचने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने के लिए 'मुख्य प्रयोजन के नियम' और 'मूल भंग की संकल्पना' को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होंगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति, बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में

अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है, बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

33. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

34. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार किया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि अनुज्ञप्ति जाली थी । यदि एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।
>
> उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –
>
> (1) **स्वर्ण सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।
>
> (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।
>
> (3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।
>
> (4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।
>
> उच्च न्यायालय/आयोग विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेगा ।

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस.सी.).

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

35. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् इस रकम को बीमाकृत से वसूल किया जा सकता है ।

36. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"8. **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हममें से एक (न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत है –

'38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण से अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[2] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

(3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया गया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।'

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य, [(2007) 5 एस. सी. सी 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि ऐसे किसी मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम के अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए **लक्ष्मी नारायण दत्त** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

37. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

38. जहां तक श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 4 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव "रतन" द्वारा अवलंब लिए

गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

39. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए बलजीत कौर, [2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.)] वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश देते हैं कि बीमाकर्ता अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थियों-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषय-वस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत व्यक्ति को धनराशि संदत्त करने से पूर्व यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेंगे । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से धनराशि वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

40. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

> "प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूली करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकती है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषय-वस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत व्यक्ति की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि की वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

41. हमारी राय में, उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.).

अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 3) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

42. तथापि, हम इस न्यायालय के उन दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

43. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा-कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत बलजीत कौर वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया **नन्जप्पन** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने

---

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये तरीके सभी उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों से तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए गए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और केवल उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

44. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती छल्ला भरथम्मा और अन्य (2005) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) वाले मामले में

[1] 2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख (उद्धृत) किया है कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्राही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है – 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे, भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तःकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य, [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया है कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

45. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी-प्रत्यर्थी सं. 3 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

46. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) से उसे वसूल करने के लिए अधिकरण के समक्ष समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे ।

47. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 3) द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

48. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

49. उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा की गई अपील खारिज की जाती है ।

50. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

रामा नन्द और अन्य

बनाम

अमृत लाल और अन्य

तारीख 26 मार्च, 2012

न्यायमूर्ति ए. पी. साही

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 6, नियम 17 – वाद पत्र – संशोधन – संशोधनों के लिए वादी को तीन बार अवसर दिए जाने – वादी के काउंसेल द्वारा अतिरिक्त लिखित कथन फाइल न करने के लिए पृष्ठांकन किया जाना – बाद में काउंसेल को बदलने पर पूर्वतर काउंसेल की गलत सलाह का आधार लिया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा और अवसर देने से इनकार – रिट याचिका में चुनौती – गलत सलाह की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती ।

वादियों ने न्यूनतम तीन अवसरों पर वाद पत्र में संशोधनों की ईप्सा की थी । प्रथम संशोधन वर्ष 1992 में अनुज्ञात किया गया था । दूसरा संशोधन इस तथ्य के संबंध में फाइल किया गया था कि वाद के लंबन के दौरान यह अभिकथन किया गया कि वाद के लंबन के दौरान प्रतिवादियों ने मरहा (छप्पर की छत) डालकर विवादित भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है । आदेश 6, नियम 17 के अधीन यह आवेदन वर्ष 2001 में फाइल किया गया था और इसे तारीख 4 सितंबर, 2001 को मंजूर किया गया था । इसके पश्चात् वाद में कार्यवाही की गई थी और साक्ष्य तथा मुख्य परीक्षा बंद होने के पश्चात् याचियों ने जो कि प्रतिवादी हैं, अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए अनुरोध करते हुए तारीख 3 अप्रैल, 2010 को एक आवेदन फाइल किया गया था । अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने की इजाज़त के लिए आवेदन तारीख 19 मई, 2011 को खारिज कर दिया गया था और इस आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया पुनरीक्षण तारीख 31 जनवरी, 2012 को खारिज कर दिया गया । प्रतिवादियों ने इन आदेशों से व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची-प्रतिवादियों द्वारा फाइल किए गए उपर्युक्त आवेदन

पर वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा आक्षेप किया गया था और विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वाद पिछले 22 वर्षों से लंबित है और वाद में 3 संशोधन मांगे जा चुके हैं जिनके लिए प्रतिवादियों को अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए पर्याप्त समय दिया गया था तथापि, उनके वकील ने तारीख 30 अक्तूबर, 2007 का विनिर्दिष्ट रूप से यह पृष्ठांकन किया कि वह तारीख 4 सितंबर, 2001 को मंजूर किए गए संशोधन के संबंध में कोई लिखित कथन फाइल नहीं करना चाहते । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह आवेदन कार्यवाहियों को लंबा खींचने के लिए और विचारण न्यायालय के विनिश्चय को रोकने के लिए असद्भाविक रूप से फाइल किया गया है क्योंकि प्रतिवादियों को लिखित कथन फाइल करने के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे जिनका उनके वकील ने फायदा नहीं उठाया । ऐसी स्थिति में आवेदन खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार विचारण न्यायालय ने तारीख 19 मई, 2011 को आदेश पारित किया । इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि याचियों को जो प्रतिवादी हैं, पिछले अनेक वर्षों में एक वकील द्वारा सम्यक्त: प्रतिनिधित्व मिला था जिन्होंने जानबूझकर तारीख 30 अक्तूबर, 2007 का यह पृष्ठांकन किया कि वे कोई अतिरिक्त कथन फाइल नहीं करना चाहते । इसके पश्चात् साक्ष्य लिया गया था और साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की गई थी । सुनवाई के समय नियुक्त किए गए किसी नए वकील ने यह बताया कि अतिरिक्त लिखित कथन फाइल न करने की गलती की गई है । न्यायालय के मतानुसार यथा अभिकथित याचियों के वकील की गलती किसी प्रकार की गलती नहीं है । वकील द्वारा कोई लिखित कथन फाइल न करने का जानबूझकर पृष्ठांकन किया गया था । इसके अतिरिक्त संशोधित वाद पत्र में उठाए गए अभिवाक् के संबंध में प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य पेश किया गया है । अतः वे वकील की ओर से या अपनी ओर से कोई गलती होने का अभिवाक् नहीं कर सकते । याचियों को यह अभिवाक् करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता कि गलत सलाह के आधार पर उनके वकील ने पृष्ठांकन किया था । यदि इस बारे में माफी दी जाती है तो प्रत्येक मामले में मुकदमेदार अनैतिक रूप से ऐसा अभिवाक् करेंगे और किसी न किसी बहाने मामले को पुन: खुलवाएंगे । बाद में ऐसा नियुक्त काउंसेल जो विधि की अच्छी जानकारी रखता है, यह दलील नहीं दे सकता कि पूर्वतर काउंसेल अक्षम था, विशेषतया इस मामले में

जहां वकील द्वारा लिखित में यह पृष्ठांकन किया गया है कि वह कोई अतिरिक्त लिखित कथन फाइल नहीं करना चाहता । उपर्युक्त परिस्थितियों में और अभिलेख पर के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह दलील देने के लिए कि न्यायालय को अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । (पैरा 4, 6 और 7)

अपीली (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2012 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 12067.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री सत्यम सिंह और शिवनाथ सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति ए. पी. साही – याची प्रत्यर्थी-वादियों द्वारा स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए वाद में प्रतिवादी हैं ।

2. वादियों ने न्यूनतम तीन अवसरों पर वाद पत्र में संशोधनों की ईप्सा की थी । प्रथम संशोधन वर्ष 1992 में अनुज्ञात किया गया था । दूसरा संशोधन इस तथ्य के संबंध में फाइल किया गया था कि वाद के लंबन के दौरान यह अभिकथन किया गया कि वाद के लंबन के दौरान प्रतिवादियों ने मरहा (छप्पर की छत) डालकर विवादित भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है । आदेश 6, नियम 17 के अधीन यह आवेदन वर्ष 2001 में फाइल किया गया था और इसे तारीख 4 सितंबर, 2001 को मंजूर किया गया था । इसके पश्चात् वाद में कार्यवाही की गई थी और साक्ष्य तथा मुख्य परीक्षा बंद होने के पश्चात् याचियों ने जो कि प्रतिवादी हैं, अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए अनुरोध करते हुए तारीख 3 अप्रैल, 2010 को एक आवेदन फाइल किया गया था । अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने की इजाज़त के लिए आवेदन तारीख 19 मई, 2011 को खारिज कर दिया गया था और इस आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया पुनरीक्षण तारीख 31 जनवरी, 2012 को खारिज कर दिया गया । प्रतिवादियों ने इन आदेशों से व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की है ।

3. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री शिवनाथ सिंह ने यह दलील दी है कि उदार मत अपनाकर कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर चाहा गया संशोधन मंजूर किया जाना चाहिए था । अतिरिक्त लिखित कथन फाइल न करने की कमी याचियों की जो विधि के जानकार नहीं हैं, अनभिज्ञता के कारण और उचित विधिक सलाह की कमी के कारण अथवा काउंसेल की गलत सलाह के कारण उत्पन्न हुई । श्री शिवनाथ सिंह ने यह दलील दी है कि अंतिम बहस के प्रक्रम पर याचियों ने दूसरे काउंसेल श्री रामाधीन मौर्या को नियुक्त किया तो उन्होंने अंतिम बहस के समय संपूर्ण फाइल का निरीक्षण करने के पश्चात् यह सलाह दी कि भूल हुई है । इस विधिक सलाह के आधार पर अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए इजाज़त देने का अनुरोध करते हुए आवेदन फाइल किया गया था । ,

4. याची-प्रतिवादियों द्वारा फाइल किए गए उपर्युक्त आवेदन पर वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा आक्षेप किया गया था और विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वाद पिछले 22 वर्षों से लंबित है और वाद में 3 संशोधन मांगे जा चुके हैं जिनके लिए प्रतिवादियों को अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए पर्याप्त समय दिया गया था तथापि, उनके वकील ने तारीख 30 अक्तूबर, 2007 का विनिर्दिष्ट रूप से यह पृष्ठांकन किया कि वह तारीख 4 सितंबर, 2001 को मंजूर किए गए संशोधन के संबंध में कोई लिखित कथन फाइल नहीं करना चाहते । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह आवेदन कार्यवाहियों को लंबा खींचने के लिए और विचारण न्यायालय के विनिश्चय को रोकने के लिए असद्भाविक रूप से फाइल किया गया है क्योंकि प्रतिवादियों को लिखित कथन फाइल करने के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे जिनका उनके वकील ने फायदा नहीं उठाया । ऐसी स्थिति में आवेदन खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार विचारण न्यायालय ने तारीख 19 मई, 2011 को आदेश पारित किया ।

5. इस आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल किया गया था जिसमें उक्त आदेश की पुष्टि की गई ।

6. श्री शिवनाथ सिंह को सुनने के पश्चात् और इस मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि याचियों को जो प्रतिवादी हैं, पिछले अनेक वर्षों में एक वकील द्वारा

सम्यक्त: प्रतिनिधित्व मिला था जिन्होंने जानबूझकर तारीख 30 अक्तूबर, 2007 का यह पृष्ठांकन किया कि वे कोई अतिरिक्त कथन फाइल नहीं करना चाहते । इसके पश्चात् साक्ष्य लिया गया था और साक्षियों की प्रति-परीक्षा की गई थी । सुनवाई के समय नियुक्त किए गए किसी नए वकील ने यह बताया कि अतिरिक्त लिखित कथन फाइल न करने की गलती की गई है । मेरे मतानुसार यथा अभिकथित याचियों के वकील की गलती किसी प्रकार की गलती नहीं है । वकील द्वारा कोई लिखित कथन फाइल न करने का जानबूझकर पृष्ठांकन किया गया था । इसके अतिरिक्त संशोधित वाद पत्र में उठाए गए अभिवाक् के संबंध में प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य पेश किया गया है । अतः वे वकील की ओर से या अपनी ओर से कोई गलती होने का अभिवाक् नहीं कर सकते । याचियों को यह अभिवाक् करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता कि गलत सलाह के आधार पर उनके वकील ने पृष्ठांकन किया था । यदि इस बारे में माफी दी जाती है तो प्रत्येक मामले में मुकदमेदार अनैतिक रूप से ऐसा अभिवाक् करेंगे और किसी न किसी बहाने मामले को पुन: खुलवाएंगे। बाद में ऐसा नियुक्त काउंसेल जो विधि की अच्छी जानकारी रखता है, यह दलील नहीं दे सकता कि पूर्वतर काउंसेल अक्षम था, विशेषतया इस मामले में जहां वकील द्वारा लिखित में यह पृष्ठांकन किया गया है कि वह कोई अतिरिक्त लिखित कथन फाइल नहीं करना चाहता ।

7. उपर्युक्त परिस्थितियों में और अभिलेख पर के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए यह दलील देने के लिए कि न्यायालय को अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

8. याचिका में कोई बल नहीं है और एतद्द्वारा इसे खारिज किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

हबीब

बनाम

टी. सी. सेबास्टीयन और एक अन्य

तारीख 8 दिसंबर, 2010

न्यायमूर्ति ए. के. बशीर और न्यायमूर्ति पी. क्यू. बरकत अली

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 168(2) और 173 [सपठित केरल मोटर यान नियम, 1989 – नियम 239(3), 246, 253, 254 और 398] – मोटर दुर्घटना दावा – अधिकरणों द्वारा पंचाट – पंचाट की प्रति जारी करने की अपेक्षा – अनुपालन अधिकरणों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे पंचाट की प्रतियां जारी करने के मामले में प्रक्रियात्मक नियमों पर सख्ती से पालन करें ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 168(2) और 173 – मोटर दुर्घटना दावा – प्रतिकर बढ़ाने के लिए अपील – अपील के साथ पंचाट की प्रति संलग्न करने की अपेक्षा – पंचाट की कार्बन प्रति के साथ अपील फाइल की जानी – जहां दावेदार द्वारा प्रतिकर बढ़ाने के लिए अपील फाइल की गई हो वहां उसे अपील के ज्ञापन के साथ सम्यक् रूप से प्रमाणित प्रति संलग्न करनी चाहिए – कार्बन प्रति देने की अपेक्षा का उपबंध दावेदार को केवल निष्पादन हेतु समर्थ बनाने के लिए किया गया है ।

मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन फाइल की गई इस अपील में अपीलार्थी/दावाकर्ता ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की राशि को आक्षेपित किया है । अपील सुनवाई के लिए स्वीकार करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सही हो सकता है कि निःशुल्क उपलब्ध होने वाली कार्बन प्रति पर नियम 254 के अधीन की जाने वाली प्रविष्टि सं. 5 से 8 का कोई महत्व नहीं हो । किन्तु फिर भी अधिकरण के विषय में यह बात हो सकती है कि केरल मोटर यान नियमों के नियम 398 की आज्ञा का आवश्यक रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए । सम्यक् रूप से नियुक्त किए गए किसी अधिकारी द्वारा उचित प्रमाणीकरण के बिना और न्यायालय की मुद्रा के बिना जारी की गई कार्बन प्रति को किसी भी रूप में

प्रमाणित विशिष्टियों के अभाव में, जिसमें आवेदन की संख्या और तारीख, वह तारीख जब प्रति तैयार की गई थी और वह तारीख जब प्रति दी गई थी आदि हैं, अपील न्यायालय के लिए यह कठिन होगा कि अपील को स्वीकार करने से पूर्व किस प्रकार कार्यवाही करें । यह आश्चर्य की बात है कि राज्य के अधिकतर अधिकरण नियम बनाने वाली प्राधिकारी की प्रज्ञा की उपेक्षा करते हैं । किसी भी रूप में अधिकरणों द्वारा प्रक्रियात्मक नियमों का अनुपालन न किए जाने का सर्मथन नहीं किया जा सकता अधिकरणों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे अब से पंचाट की प्रति जारी करने के मामले में प्रक्रियात्मक नियमों का सख्ती से पालन करें । प्रसंगवश यह भी देखा गया है कि राज्य के अनेक प्राधिकरणों द्वारा जारी की जाने वाली कार्बन प्रतियां अत्यधिक खराब किस्म की स्टेशनरी पर टाइप करके जारी की जाती हैं । ये कार्बन प्रतियां कुछ सप्ताहों में नहीं तो कुछ मासों में पूर्ण रूप से पढ़ने योग्य नहीं रह जाती हैं । निम्न किस्म के कागज पर कुछ समय में ही सिलवटें पड़ जाती हैं और वह कुम्हला जाता है । कुछ मामलों में यह भी देखा गया है कि तथाकथित स्वच्छ प्रतियां भी सुपाठ्य या पढ़ने योग्य नहीं होती हैं । यह सही है कि इन मामलों में अधिकरण भी निस्सहाय हैं क्योंकि यह राज्य सरकार का कर्तव्य है कि उन्हें उचित और उपयुक्त और पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराएं । तथापि, यह दुख की बात है कि संबद्ध अधिकारी इस न्यायालय द्वारा पर्याप्त प्रख्यानों के बावजूद प्रशासनिक दृष्टि से उपदर्शित इस अपर्याप्तता और कमी की ओर ध्यान नहीं देते । किसी भी स्थिति में यह आशा की जाती है कि राज्य के तन्त्र इन टिप्पणियों पर ध्यान देंगे और बिना किसी विलंब के सुधारात्मक कदम उठाएंगे । (पैरा 18, 19 और 20)

मोटर यान अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (2) के अधीन यथा उपबंधित दावेदार को जो निःशुल्क प्रति दी जानी है वह स्पष्ट रूप से दावेदार को बिना विलंब के पंचाट के निष्पादन के लिए समर्थ बनाती है । इसी प्रकार से यदि कार्बन प्रति शीघ्र उपलब्ध करा दी जाती है तो बीमा कंपनी पंचाट की राशि का शीघ्र भुगतान करने के लिए कदम उठा सकती है । पक्षकारों को ''निःशुल्क कार्बन प्रति'' उपलब्ध कराने का निदेश देने की विधायी प्रक्रिया के पीछे यही विचार नजर आता है । इस दृष्टि से देखने पर न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता जिससे यह कहा जा सके कि दावेदार प्रतिकर को बढ़वाने के लिए निःशुल्क कार्बन प्रति का प्रयोग करके अपील फाइल करने का

हकदार बन जाता है । कई मामलों में न्यायालय ने यह पाया है कि दावेदारों द्वारा प्रायिक रूप से प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के पश्चात् ही अपील फाइल की जाती है । यद्यपि न्यायालय ने कई मामलों में यह पाया है कि दावेदार इस न्यायालय के समक्ष कई मासों और यहां तक कि कई वर्षों के विलंब के पश्चात् कार्बन प्रति के साथ ही अपील फाइल करते हैं । किंतु ऐसी अपीलें भी इस न्यायालय द्वारा स्वीकार की गईं हैं, लेकिन क्यों ? निःशुल्क कार्बन प्रतियों की सहायता से प्रतिकर की राशि को बढ़ाने की अपील को स्वीकार करने का न्यायालय को कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता । न्यायालय का यह मत है कि दावेदार द्वारा प्रतिकर की राशि में बढ़ोतरी के लिए फाइल अपील तभी स्वीकार की जानी चाहिए जब वह केरल सिविल व्यवहार नियमों के अध्याय-7 के अधीन यथाउपबंधित अधिकरण द्वारा जारी की गई प्रमाणित प्रति के साथ फाइल की गई हों । न्यायालय तद्नुसार अभिनिर्धारित करता है । सभी अपीलें जो अधिनियम की धारा 173 के अधीन 1 जनवरी, 2011 से पूर्व इस न्यायालय के समक्ष फाइल की जाएंगी, तभी ग्रहण की जाएंगी जब उनके साथ केरल सिविल व्यवहार नियमों के अध्याय-7 के अधीन यथाउपबंधित सम्यक्तः प्रमाणित प्रति संलग्न की गई हो । किंतु न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि यह निदेश नियम 246 के साथ पठित नियम 249 के उप-नियम (3) के अधीन होगा । अत्यावश्यकता के मामले में व्यथित पक्षकार सिविल व्यवहार नियमों के नियम 239(3) के अधीन जारी की गई निःशुल्क कार्बन प्रति के साथ अपील फाइल कर सकेगा । (पैरा 31, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1985]	1985 के. एल. टी. 1069 : **थाथा** बनाम **पारू ;**	28
[1958]	ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 414 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सी. टोबिट और अन्य** ।	23

सिविल अपीली अधिकारिता : 2010 की एम. ए. सी. ए. सं. 2565.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मैथ्यू जॉन, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से —

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. बशीर ने दिया ।

न्या. बशीर – मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन फाइल की गई इस अपील में अपीलार्थी/दावाकर्ता ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की राशि को आक्षेपित किया है ।

2. अधिकरण से प्राप्त की गई "निःशुल्क प्रति" के आधार पर यह अपील फाइल की गई है । निःशुल्क प्रति पर किए गए पृष्ठांकन को देखते हुए रजिस्ट्री ने यह उल्लेख किया है कि इस अपील को फाइल करने में विलंब हुआ है ।

3. तारीख 31 दिसंबर, 2009 को अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय पारित किया गया था । निःशुल्क उपलब्ध कराई गई प्रति में दो पृष्ठांकन हैं जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "तारीख 20 जनवरी, 2010 को तैयार तारीख 23 जनवरी, 2010 को जारी, हस्ताक्षर ।"

4. आपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री मैथ्यू जॉन ने यह दलील दी कि अपील तारीख 17 मई, 2010 को जिस दिन उच्च न्यायालय ग्रीष्म अवकाश के उपरांत पुनः खुला था, फाइल की गई थी और इसलिए अपील पूर्णतया समय पर फाइल की गई है ।

5. किंतु जब उपरोक्त उत्तर के साथ अपील पुनः प्रस्तुत की गई, तब भी रजिस्ट्री ने विलंब के प्रश्न पर पुनः अपना वही आधार दोहराया और यह विचार व्यक्त किया कि अपील कानूनी परिसीमा अवधि के पश्चात् फाइल की गई थी । रजिस्ट्री द्वारा यह भी बताया गया कि निःशुल्क प्राप्त की गई प्रति पर कोई भी प्रमाणिक पृष्ठांकन नहीं पाया गया था । उस स्तर पर विद्वान् काउंसेल ने रजिस्ट्री से यह अनुरोध किया कि यह मामला समुचित आदेशार्थ खंडपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।

6. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि निःशुल्क प्राप्त की गई प्रति पर केवल दो ही प्रविष्टियां उपलब्ध हैं अर्थात् वह तारीख जब प्रति तैयार की गई थी और वह तारीख जब यह पक्षकार को जारी की गई थी ।

7. यह स्पष्टतः यह देखा जा सकता है कि इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उपरोक्त पृष्ठांकन किसने किए हैं जबकि हस्ताक्षरकर्ता का नाम पहचाना जा सकता है । उस पृष्ठांकन के नीचे पदाभिहित अधिकारी या

अधिकरण की कोई सील भी नहीं लगी है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए रजिस्ट्री द्वारा की गई आपत्ति गलत नहीं है ।

8. इस न्यायालय की जानकारी में यह आया है कि राज्य में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण बिना किसी विहित प्रक्रिया सन्नियमों के पंचाट की ऐसी निःशुल्क प्रतियां जारी कर रहे हैं । यह मामला भी उसी तरह का एक उदाहरण है ।

9. दावा अधिकरण के किसी पंचाट से व्यथित कोई व्यक्ति मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन पंचाट की तारीख 90 दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है । धारा 168 की उपधारा (2) यह उपबंध करती है कि दावा अधिकरण यथाशक्य शीघ्र और किसी भी दशा में पंचाट की तारीख से 15 दिन की अवधि के भीतर पक्षकारों को पंचाट की प्रतियां उपलब्ध कराने की व्यवस्था करेगा ।

10. केरल मोटर यान नियम 1989 के नियम, 396 का उपनियम (2) यह उपबंध करता है कि दावा अधिकरण के पंचाट के जिस पंचाट के विरुद्ध अपील की गई है, विरुद्ध किसी अपील के साथ निर्णय की प्रति और नियम 397 के उपनियम (3) में विहित फीस संलग्न की जाएगी ।

11. अधिनियम की धारा 173 के अधीन यह न्यायालय किसी अपील के ज्ञापन को तभी ग्रहण करता है यदि उसके साथ अधिकरण द्वारा दी गई निःशुल्क प्रति संलग्न की जाती है । राज्य के अधिकरण दावाकर्ताओं को पंचाट पारित होते ही 5 रुपए की नाममात्र की फीस के भुगतान करने पर निःशुल्क कार्बन प्रति उपलब्ध करा रहे हैं यद्यपि कुछ मामलों में कुछ विलंब भी हुआ । जब ऐसी कार्बन प्रतियां जारी की जाती हैं तब अधिकतर अधिकरण ऐसी प्रमाणित प्रतियां जारी करने में विहित संनियमों या प्रक्रिया का पालन नहीं करते हैं ।

12. केरल मोटर यान नियमों का नियम 398 इस प्रकार है :–

> "प्रमाणित प्रतियां – केरल सिविल व्यवहार नियमों में प्राप्त प्रमाणित प्रतियों के जारी करने से संबंधित नियम दावा अधिकरण के मामले में यथा आवश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे ।"

13. केरल सिविल व्यवहार नियमों का अध्याय प्रमाणित प्रतियों और नियमों के मुद्रण से संबद्ध है । नियम 239 जो कि हमारे प्रयोजन के लिए पूर्णतया सुसंगत है, उद्धृत किया जा रहा है :–

"239. **प्रतियों के लिए आवेदन** – (1) किसी भी कार्यवाही या फाइल किए गए या न्यायालय की अभिरक्षा में के किसी दस्तावेज़ की प्रति प्राप्त करने के लिए हकदार कोई व्यक्ति आवेदक का नाम, या कार्यवाही में उसकी स्थिति, यदि वह उसमें पक्षकार है तथा उस दस्तावेज़ का वर्णन जिसकी प्रति अपेक्षित है, का उल्लेख करते हुए, आवेदन प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) न्यायाधीश के कार्यवृत्त या पत्राचार की प्रतियां और अन्य कागज पत्र जो कि पूर्णतया न्यायिक नहीं हैं, न्यायाधीश को आदेश होने पर ही दिए जाएंगे ।

(3) कार्यवाही का कोई भी पक्षकार निर्णय या आदेश होने के तुरंत पश्चात् न्यायालय से मौखिक रूप से उस आदेश की कार्बन प्रति या फोटोस्टेट प्रति के लिए प्रार्थना कर सकेगा और यदि न्यायालय ऐसा निदेश देता है तो प्रमाणित कार्बन प्रति या फोटोस्टेट, पक्षकार द्वारा नियम 246 के अधीन तत्काल प्रति देने के लिए नियम 248 की अपेक्षाओं के अनुरूप प्रति प्रभारों के साथ प्रस्तुत करने पर जारी कर दी जाएगी :

परंतु ऐसे मामलों में जहां राज्य सरकार या केंद सरकार एक पक्षकार है, ऐसी कार्बन प्रति, यथास्थिति राज्य सरकार या केंद्र सरकार द्वारा लिखित मांग किए जाने पर कार्यालय द्वारा निःशुल्क जारी की जा सकेगी ।

(4) एल. ए. आर. मामलों में आवेदन किए जाने पर निर्णय और डिक्री की एक प्रति राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले संबंधित सरकारी अभिवक्ता को निःशुल्क प्रदान की जाएगी ।

(5) परंतु उप-नियम (4) के अधीन निःशुल्क प्रति के प्रदाय से नियम 258 की अपेक्षाओं पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।"

14. नियम 239 का उप-नियम यह उपबंध करता है कि किसी न्यायालय की कार्यवाही या उसकी अभिरक्षा में फाइल किए गए किसी दस्तावेज़ की प्रति प्राप्त करने का हकदार कोई व्यक्ति, प्रारूप सं. 47 के अनुसार आवेदक का नाम वाद या कार्यवाही में उसकी स्थिति यदि वह उसमें पक्षकार है और उस दस्तावेज़ का वर्णन जिसकी प्रति अपेक्षित है, उल्लेख करते हुए आवेदन प्रस्तुत कर सकेगा ।

15. उप-नियम (3) यह उपबंध करता है कि कार्यवाही का कोई पक्षकार निर्णय या आदेश होने के तुरंत बाद मौखिक रूप से न्यायालय से उसकी प्रमाणित कार्बन प्रति या फोटोस्टेट प्रति के लिए प्रार्थना कर सकता है और यदि न्यायालय ऐसा निदेश देता है तो पक्षकार को नियम 246 के अधीन अति आवश्यक प्रति के लिए आवेदन करने पर, जिसके साथ नियम 248 की अपेक्षानुसार प्रति प्रभार संलग्न करने पर, यथा प्रमाणित कार्बन प्रति या फोटोस्टेट प्रति जारी की जा सकेगी ।

16. अध्याय 7 के अन्य नियम यह प्रक्रिया अधिकथित करते हैं कि किसी प्रकार इस प्रयोजन के लिए स्टांप पेपर मांगे जाएंगे, किस प्रकार प्रति दिए जाने की तारीख की सूचना दी जाएगी और वह क्रम जिसमें प्रतियां तैयार की जाएंगी तथा किस प्रकार दी जाने वाली प्रतियों का प्रकाशन आदि किया जाएगा । इस मामले से सुसंगत नियम 253 और 254 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :–

> "253. **मुद्रांकन और प्रमाणपत्र** – न्यायालय द्वारा दी जाने वाली सभी प्रतियां इस प्रयोजन के लिए नियुक्त अधिकारी द्वारा सत्यापित प्रति के रूप में प्रमाणित की जाएंगी और न्यायालय की मुद्रा से मुद्रांकित की जाएंगी ।"
>
> "254. **प्रतियों का पृष्ठांकन** – प्रत्येक प्रति पर यथास्थिति प्रतिलिपि अधीक्षक या परीक्षक के हस्ताक्षर पृष्ठांकित किए जाएं तथा निम्नलिखित विशिष्टियां दर्शाईं जाएंगी –
>
> 1. न्यायालय का नाम ।
> 2. वाद या उच्च कार्यवाही का वर्ष और संख्या ।
> 3. आवेदक का नाम ।
> 4. आवेदन की संख्या और तारीख ।
> 5. स्टांप पेपर मांगने की तारीख ।
> 6. पेपर्स तैयार करने की तारीख ।
> 7. अतिरिक्त पेपर्स की मांग किए जाने की तारीख ।
> 8. अतिरिक्त पेपर्स पेश करने की तारीख ।
> 9. वह तारीख जब प्रति तैयार की गई थी ।
> 10. प्रति प्राप्त करने के लिए हाजिर होने के लिए तारीख ।

11. वह तारीख जब प्रति परिदत्त की गई थी ।"

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि अपीलार्थी द्वारा अपील के ज्ञापन के साथ प्रस्तुत की गई पंचाट की निःशुल्क प्रति पर इस प्रयोजन के लिए नियुक्त किए गए अधिकारी का प्रमाणीकरण नहीं होता है । न ही उस पर नियम 253 के अधीन यथा उपबंधित अधिकरण की मुद्रा होती है । इसके अतिरिक्त उस पर नियम 254 के अधीन यथा उपबंधित प्रमाणित प्रति पर पृष्ठांकन साधारणतया नहीं होते हैं ।

18. यह सही हो सकता है कि निःशुल्क उपलब्ध होने वाली कार्बन प्रति पर नियम 254 के अधीन की जाने वाली प्रविष्टि सं. 5 से 8 का कोई महत्व न हो । किन्तु फिर भी अधिकरण के विषय में यह बात हो सकती है कि केरल मोटर यान नियमों के नियम 398 की आज्ञा का आवश्यक रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए । सम्यक् रूप से नियुक्त किए गए किसी अधिकारी द्वारा उचित प्रमाणीकरण के बिना और न्यायालय की मुद्रा के बिना जारी की गई कार्बन प्रति को किसी भी रूप में प्रमाणित विशिष्टियों के अभाव में, जिसमें आवेदन की संख्या और तारीख, वह तारीख जब प्रति तैयार की गई थी और वह तारीख जब प्रति दी गई थी आदि हैं, अपील न्यायालय के लिए यह कठिन होगा कि अपील को स्वीकार करने से पूर्व किस प्रकार कार्यवाही करें । यह आश्चर्य की बात है कि राज्य के अधिकतर अधिकरण नियम बनाने वाले प्राधिकारी की प्रज्ञा की उपेक्षा करते हैं । किसी भी रूप में अधिकरणों द्वारा प्रक्रियात्मक नियमों का अनुपालन न किए जाने का समर्थन नहीं किया जा सकता । अधिकरणों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे अब से पंचाट की प्रति जारी करने के मामले में प्रक्रियात्मक नियमों का सख्ती से पालन करें

19. प्रसंगवश यह भी देखा गया है कि राज्य के अनेक प्राधिकरणों द्वारा जारी की जाने वाली कार्बन प्रतियां अत्यधिक खराब किस्म की स्टेशनरी पर टाइप करके जारी की जाती हैं । ये कार्बन प्रतियां कुछ सप्ताहों में नहीं तो कुछ मासों में पूर्ण रूप से पढ़ने योग्य नहीं रह जाती हैं । निम्न किस्म के कागज पर कुछ समय में ही सिलवटें पड़ जाती हैं और वह कुम्हला जाता है । कुछ मामलों में यह भी देखा गया है कि तथाकथित स्वच्छ प्रतियां भी सुपाठ्य या पढ़ने योग्य नहीं होती हैं ।

20. यह सही है कि इन मामलों में अधिकरण भी निस्सहाय हैं क्योंकि यह राज्य सरकार का कर्तव्य है कि उन्हें उचित और उपयुक्त और पर्याप्त

सुविधाएं उपलब्ध कराएं । तथापि, यह दुख की बात है कि संबद्ध अधिकारी इस न्यायालय द्वारा पर्याप्त प्रख्यानों के बावजूद प्रशासनिक दृष्टि से उपदर्शित इस अपर्याप्तता और कमी की ओर ध्यान नहीं देते । किसी भी स्थिति में यह आशा की जाती है कि राज्य के तन्त्र इन टिप्पणियों पर ध्यान देंगे और बिना किसी विलंब के सुधारात्मक कदम उठाएंगे ।

21. इस विवाद्यक पर सुनवाई के समय पहले ही हम श्री मैथ्यू की दलील पर यह शंका जता चुके हैं कि क्या कोई अपील ग्रहण की जा सकती है यदि उसके साथ प्रमाणित प्रति संलग्न नहीं की गई है । अधिकरणों द्वारा पंचाट की निःशुल्क प्रतियां खराब कागज पर तैयार किए जाने या वे गलत ढंग से जारी करने की हमारी शंका के अतिरिक्त किस कारण से हमें उपरोक्त शंका हुई है । इसके लिए एक और वैध आधार भी है ।

22. यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रत्येक अधिकरण संबद्ध पक्षकारों को यथा शीघ्र और किसी भी प्रकार से पंचाट किए जाने की तारीख के 15 दिन के भीतर पंचाट की प्रति देने के लिए आबद्ध है । धारा 168 को उपधारा (2) प्रत्येक अधिकरण पर यह दायित्व डालती है कि वह प्रत्यक्षतया यह सुनिश्चित करने के लिए दावाकर्ता को अविलंब पंचाट की प्रति प्रदान करे कि दावाकर्ता विलंब के बिना निर्णय का फायदा प्राप्त करे । किंतु यह देखने में आया है कि दावाकर्ताओं द्वारा इन निःशुल्क प्राप्त की गई प्रतियों का उपयोग पंचाट के निष्पादन कराने के प्रयोजन के बजाय अपील करने में होता है । तथ्यतः अधिकतर बीमा कंपनियां पंचाट का तभी अनुपालन करती हैं जब प्रभावी कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं । तथापि, हम केवल यह दर्शाने के लिए ही इस पहलू को निर्दिष्ट कर रहे हैं कि वह हितकारी प्रयोजन जो विधायिका ने धारा 168 की उपधारा (2) को अधिनियमन करते समय ध्यान में रखा है, इस वास्तविक अर्थ में पूरा नहीं किया गया है । उपरोक्त पृष्ठभूमि में हमारा यह मत है कि क्या यह अधिकथित करना उचित नहीं होगा कि अधिनियम की धारा 173 के अधीन अपील तभी ग्रहण की जानी चाहिए जब केरल सिविल व्यवहार नियमों के नियम 245 के अधीन यथा उपबंधित पंचाट की सम्यक्तः प्रमाणित प्रति संलग्न की गई हो ।

23. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सी. टोबिट और अन्य**[1] वाले मामले में

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 414.

उच्चतम न्यायालय के समक्ष विवाद्यक दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 419 (1973 की संहिता की धारा 382) के अधीन "प्रति" शब्द की परिभाषा या अर्थ के संबंध में था । प्रश्न यह था कि क्या उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सेशन न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध निर्णय की "सादा प्रति" के साथ प्रस्तुत की गई दांडिक अपील उचित रूप से प्रस्तुत की गई मानी जा सकती है या नहीं । दूसरे शब्दों में उठाया गया प्रश्न यह था कि क्या संहिता की धारा 419 में प्रयुक्त शब्द "प्रति" को प्रमाणित प्रति के रूप में माना जा सकता है या नहीं ।

24. उपरोक्त निर्णय का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश राज्य ने परिसीमा की अवधि से बचने का प्रयत्न करते हुए आक्षेपित आदेश की "अप्रमाणित प्रति" के साथ अपील का ज्ञापन प्रस्तुत कर दिया था । अभिलेख पर यह आया है कि अपीलार्थी ने आक्षेपित निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए आवेदन फाइल किया था । अपीलार्थी ने प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के पश्चात् उसे उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया था । तथापि, अपीलार्थी को यह निदेश दिया गया था कि वह समय पर अपील प्रस्तुत न करने के लिए विलंब को माफ करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल करे । जब यह मामला खंडपीठ के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया गया तब विद्वान् न्यायाधीश इस प्रश्न पर भिन्न मत रखते थे कि क्या निर्णय की अप्रमाणित प्रति का फाइल किया जाना विधि का पर्याप्त अनुपालन है । यह मामला तीसरे न्यायमूर्ति को निर्दिष्ट किया गया था जिसका यह मत था कि धारा 419 में "सादा प्रति" शब्द का अर्थ "अप्रमाणित प्रति" से है और यह अभिनिर्धारित किया कि अप्रमाणित प्रति के साथ प्रस्तुत की गई अपील किसी भी रूप में उचित रूप में संस्थित की गई अपील नहीं मानी जा सकती । चूंकि प्रमाणित प्रति परिसीमा की अवधि समाप्त होने के पश्चात् प्रस्तुत की गई थी, इसलिए खंडपीठ द्वारा अपील खारिज कर दी गई थी । उपरोक्त आदेश को उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई थी ।

25. पुरानी संहिता की धारा 419 इस प्रकार है :–

> "419. **अपील की अर्जी** – प्रत्येक अपील अपीलार्थी या उसके प्लीडर द्वारा उपस्थित की गई लिखित अर्जी के रूप में की जाएगी और ऐसी प्रत्येक अर्जी के साथ (जब तक वह न्यायालय जिसमें वह

> उपस्थित की जाए अन्यथा निदेश न दे) उस निर्णय या आदेश की प्रतिलिपि जिसके विरुद्ध अपील की जा रही है संलग्न की जाएगी । और जूरी द्वारा विचारणीय मामलों में धारा 367 के अधीन अभिलिखित प्रभारों पर प्रति दी जाएगी ।"

न्यायालय ने उस संदर्भ का उल्लेख करने के पश्चात् जिसमें धारा 419 और पुरानी संहिता की कुछ अन्य धाराओं अर्थात् 425, 428, 442 और 511 में "प्रति" शब्द प्रयुक्त है, न्यायमूर्तियों का यह मत था कि "यह प्रश्न कि किसी विशेष धारा में प्रति का अर्थ एक अप्रमाणित प्रति से है या एक प्रमाणित प्रति से, यह उस धारा में प्रयुक्त शब्द 'प्रति' के विषय या संदर्भ पर निर्भर करता है ।" माननीय न्यायमूर्तियों ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 और धारा 76 के अंतर्विष्ट उपबंधों पर भी विचार किया था ।

26. साक्ष्य अधिनियम की धारा 74 और 76 के अतिरिक्त संहिता में अंतर्विष्ट संबद्ध उपबंधों पर विस्तृत रूप से विचार करने और इस बिन्दु पर निर्णय विधि तथा मैक्स वैल्स इंटर प्रेटेशन आफ स्टेटयूट्स (10 वां एडीशन, पृष्ठ 52) में किए गए संप्रेक्षणों पर विचार करने के उपरांत न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "यह सुस्थापित है कि जहां किसी विधि में प्रयुक्त किन्हीं शब्दों के अर्थ के बारे में कोई शंका उत्पन्न होती है तो उन्हें उस अर्थ में ही उचित रूप में समझा जा सकता है, जिसमें विषय को दृष्टिगत करते हुए अधिनियमित किया गया है तथा अधिनियमित किए जाने के समय विधान-मंडन का उद्देश्य था । उनका अर्थ पूर्णतः व्याकरणिक या व्युत्पत्तिक भाषा में नहीं निकाला जाना चाहिए और न ही इसके प्रसिद्ध अर्थ में क्योंकि उस विषय या अवसरों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिसमें वह प्रयुक्त हुआ है और जिससे उद्देश्य पूरा होता हो ।"

माननीय न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जहां तक धारा 419 का संबंध है, अपील के ज्ञापन के साथ फाइल की जाने वाले प्रति प्रमाणित प्रति होनी चाहिए । यद्यपि न्यायालय ने संहिता की किसी अन्य धारा में आने वाले शब्द "प्रति" का वास्तविक निर्वचन नहीं किया, तथापि, माननीय न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रत्येक अधिनियम की धारा अपने वास्तविक अर्थ और प्रभाव में स्वयं अपनी भाषा, संदर्भ एवं विन्यास पर निर्भर करती है ।

27. हमारे मतानुसार उपरोक्त मताभिव्यक्ति इस प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए सांकेतिक मार्गदर्शन के रूप में मानी जानी चाहिए कि क्या मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन पेश की गई अपील को ज्ञापन दावाकर्ता द्वारा प्राप्त की गई निःशुल्क कार्बन प्रति के साथ संलग्न किए जाने पर स्वाकार्य होगा ।

28. **थाथा** बनाम **पारू**[1] वाले मामले में माननीय न्यायमूर्ति थॉमस जैसेकि वे उस समय थे, ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या जिला न्यायालय के समक्ष आदेश की कार्बन प्रति के साथ संस्थित की गई सिविल प्रकीर्ण अपील ग्रहण किए जाने योग्य होगी या नहीं । अपील में प्रत्यर्थी द्वारा उठाया गया आरंभिक आक्षेप विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था । उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष सिविल पुनरीक्षण याचिका में चुनौती दी गई थी । इस न्यायालय ने यह अवेक्षा की कि कार्बन प्रति मुंसिफ न्यायालय द्वारा मामले की अत्यावश्यकता को देखते हुए पक्षकार द्वारा अनुरोध किए जाने पर जारी की गई थी । विद्वान् मुंसिफ ने आदेश में निम्नलिखित अभिलिखित किया था :–

> "याची वादी के काउंसेल ने मौखिक रूप से इस आदेश की कार्बन प्रति जारी करने के लिए प्रार्थना की है, आवश्यक प्रभारों के भुगतान के पश्चात् कार्बन प्रति जारी की जाए ।"

विद्वान् मुंसिफ ने आदेश के नीचे अपने हस्ताक्षर किए थे । इसके अतिरिक्त आदेश में साक्षियों, प्रदर्शों आदि के संबंध में परिशिष्ट भी संलग्न था । न्यायालय के परीक्षक ने यह पृष्ठांकित किया था कि कार्बन प्रति में न्यायायल की मुद्रा लगी हुई थी । उपरोक्त पहलू को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सिविल प्रकीर्ण अपील के साथ प्रस्तुत की गई कार्बन प्रति उस आदेश की प्रति थी जिसके विरुद्ध अपील की गई थी और कार्बन प्रति के साथ अपील का ऐसा प्रस्तुतिकरण वैध प्रस्तुतिकरण माना जाना चाहिए ।

29. इस संदर्भ में विद्वान् न्यायाधीश ने नियम 2 के उप-नियम (3) को निर्दिष्ट किया था जिसका निर्देश हम अपने निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में कर चुके हैं । नियम 239 का उप-नियम (3) किसी पक्षकार को निर्णय या आदेश किए जाने के तुरंत पश्चात् निर्णय की कार्बन प्रति या फोटोस्टेट

---

[1] 1985 के. एल. टी. 1069.

प्रति जारी किए जाने की मौखित प्रार्थना करने के लिए समर्थ बनता है । यदि अति-आवश्यक प्रति के लिए ऐसी प्रार्थना की जाती है तो न्यायालय "सम्यक्तः प्रमाणित कार्बन प्रति" जारी कर सकता है । न्यायालय नियम 24 के अधीन यथा उपबंधित उदाहरण के अनुरूप आदेश करके कार्बन प्रति जारी कर सकता है । अतः यह उल्लेख किया जा सकता है कि मामले की अत्यावश्यकता को देखते हुए न्यायालय सम्यक्तः प्रमाणित कार्बन प्रति या फोटोस्टेट प्रति जारी कर सकता है । नियम 246 यह उपबंध करता है कि अत्यावश्यक कार्बन प्रति जारी करने के लिए आवेदन किया जा सकता है ।

30. विचारणीय संक्षिप्त प्रश्न यह है कि क्या मोटर यान अधिनियिम की धारा 173 के अधीन कोई अपील ग्रहण की जा सकती है यदि यह दावाकर्ता द्वारा कार्बन प्रति के साथ फाइल की गई है और उसमें प्रतिकर को बढ़ाने की प्रार्थना की गई है । किसी भी परिकल्पना के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि मामले में अत्यावश्यकता थी । इसलिए उपरोक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में दिया जाता है ।

31. अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (2) के अधीन यथा उपबंधित दावेदार को जो प्रति निःशुल्क दी जानी है वह स्पष्ट रूप से दावेदार को बिना विलंब के पंचाट के निष्पादन के लिए समर्थ बनाती है । इसी प्रकार से यदि कार्बन प्रति शीघ्र उपलब्ध करा दी जाती है तो बीमा कंपनी पंचाट की राशि का शीघ्र भुगतान करने के लिए कदम उठा सकती है । पक्षकारों को "निःशुल्क कार्बन प्रति" उपलब्ध कराने का निदेश देने की विधायी प्रक्रिया के पीछे यही विचार नजर आता है । इस दृष्टि से देखने पर हमें यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार प्रतीत नहीं होता जिससे यह कहा जा सके कि दावेदार प्रतिकर को बढ़वाने के लिए निःशुल्क कार्बन प्रति का प्रयोग करके अपील फाइल करने का हकदार बन जाता है ।

32. कई मामलों में हमने यह पाया है कि दावेदारों द्वारा प्रायिक रूप से प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के पश्चात् ही अपील फाइल की जाती है । यद्यपि हमने कई मामलों में यह पाया है कि दावेदार इस न्यायालय के समक्ष कई मासों और यहां तक कि कई वर्षों के विलंब के पश्चात् कार्बन प्रति के साथ ही अपील फाइल करते हैं । किंतु ऐसी अपीलें भी इस न्यायालय द्वारा स्वीकार की गईं हैं, लेकिन क्यों ? निःशुल्क कार्बन प्रतियों की सहायता से प्रतिकर की राशि को बढ़ाने की अपील को स्वीकार करने का हमें कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता । हमारा यह मत है । कि दावेदार द्वारा प्रतिकर की राशि में बढ़ोतरी

की अपील तभी स्वीकार की जानी चाहिए जब वह केरल सिविल व्यवहार नियमों के अध्याय-7 के अधीन यथा उपबंधित अधिकरण द्वारा जारी की गई प्रमाणित प्रति के साथ फाइल की गई हो । हम तद्नुसार अभिनिर्धारित करते हैं ।

33. सभी अपीलें जो अधिनियम की धारा 173 के अधीन 1 जनवरी, 2011 से पूर्व इस न्यायालय के समक्ष फाइल की जाएंगी, तभी ग्रहण की जाएंगी जब उनके साथ केरल सिविल व्यवहार नियमों के अध्याय-7 के अधीन यथा उपबंधित सम्यक्तः प्रमाणित प्रति संलग्न की गई हो । किंतु हम यह स्पष्ट करते हैं कि यह निदेश नियम 246 के साथ पठित नियम 249 के उप-नियम (3) के अध्यधीन होगा । अत्यावश्यकता के मामले में व्यथित पक्षकार सिविल व्यवहार नियमों के नियम 239(3) के अधीन जारी की गई निःशुल्क कार्बन प्रति के साथ अपील फाइल कर सकेगा ।

34. कार्यालय राज्य के अधिकरणों को कार्यालय ज्ञापन/परिपत्र जारी करके निदेश देगा कि वे यह सुनिश्चित करें कि केरल मोटर यान नियमों के नियम 398 और केरल व्यवहार विहित नियमों के अध्याय-7 के अधीन नियमों का पंचाटों की प्रतियां जारी करने में पूर्ण रूप से अनुपालन करें ।

35. इस मामले में कार्यालय अपील को संख्यांकित करेगा क्योंकि हम इस बात से संतुष्ट हैं कि अपील का ज्ञापन समय के भीतर प्रस्तुत किया गया है ।

36. हमारे द्वारा अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत रखते हुए इस आदेश की एक-एक प्रति राज्य के मुख्य सचिवों को मोटर दुर्घटना दावा अधिकरणों में समुचित ढांचागत सुविधाएं उपलब्ध करने के लिए प्रदान करने के प्रयोजन से, विशेष रूप से अच्छी गुणवत्ता की स्टेशनरी, फोटोस्टेट मशीनें और उसी प्रकार की सामग्री उपलब्ध कराने के लिए कदम उठाने हेतु भेजी जाएं ।

अपील सुनवाई के लिए स्वीकार की गई ।

मह.

पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड और अन्य

बनाम

राहुल डोगरा

तारीख 6 मार्च, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार और न्यायमूर्ति मन्सूर अहमद मीर

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 – सेवा के दौरान हृदय गति रुक जाने के कारण कर्मचारी की मृत्यु – अनुकंपा नियुक्ति – इस आधार पर इनकार कि कर्मचारी की मृत्यु दुर्घटना के कारण मृत्यु होने से नहीं हुई थी – रिट याचिका – अनुकंपा नियुक्ति अचानक वित्तीय कठिनाई से निपटने के लिए सामान्य नियमों के अपवाद में तात्पर्यत है – अतः, बीमारी से मृत्यु के मामले में ऐसी नियुक्ति के लिए विचार करने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

प्रत्यर्थी-रिट याची के पिता अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों के नियोजन में थे जिनकी मृत्यु हृदय गति रुक जाने से सेवा के दौरान हुई थी । प्रत्यर्थी ने अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन दिया जो नामंजूर कर दिया गया । प्रत्यर्थी-रिट याची ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की जो मंजूर की गई जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों ने यह लेटर्स पेटेन्ट अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – खारिजी के आदेश का परिशीलन करने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि रिट याची के मामले पर किसी भी प्रकार से विचार नहीं किया गया था । रिट याचिका में आक्षेपित तारीख 22 अगस्त, 2003 की संसूचना द्वारा यह सूचना दी गई थी कि अनुकंपा आधारों पर नियुक्ति के लिए उसके आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके पिता की मृत्यु ड्यूटी पर दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी । अत: यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी स्पष्ट आदेश पारित किए बिना रिट याची को यहां से वहां दौड़ाते रहे । अपीलार्थी का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि मृतक निगम के नियोजन में था और दोपहर के खाने के अवकाश के दौरान उसके वक्ष में दर्द उठा और उसे निगम की एंबुलेंस में जिला अस्पताल, ऊधमपुर ले जाया जा रहा था जहां अस्पताल में भर्ती किए जाने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई । विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों

ने अपनी विधिक शक्ति के भीतर रिट याची के मामले पर विचार करने से इनकार किया है । इसका उत्तर निम्नलिखित कारणों से नकारात्मक है । अपीलार्थी नियमों और विनियमों के उपबंधों के निबंधनों में प्रत्यर्थी-रिट याची के दावे पर विचार करने के लिए और विस्तृत आदेश पारित करने के लिए विधिक रूप से बाध्यताधीन थे । तथापि, अपीलार्थी रिट-प्रत्यर्थियों ने विवेक का उपयोग किए बिना और मामले के गुण-दोष पर गहराई से विचार किए बिना इस एकमात्र आधार पर रिट याची के अनुरोध को खारिज कर दिया कि उसके पिता की मृत्यु दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी । अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी के अपने स्वयं के पक्षकथनानुसार उन्होंने रिट याची का दावा यांत्रिक रूप से और रिट याचिका में आक्षेपित संसूचना में दिए गए किसी न्यायोचित कारण के बिना अनुकंपा आधार पर याची की नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थी-रिट याची के मामले पर विचार करने से इनकार कर दिया । यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि अनुकंपा नियुक्ति अचानक वित्तीय कठिनाई से निपटने के लिए मृतक के कुटुम्बों को समर्थ बनाने के साथ नियुक्त करने के सामान्य नियम के अपवाद में की जाती है । तथापि, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों ने प्रत्यर्थी-याची को अनुकंपा आधारों पर नियुक्त न करते हुए बिना किसी आधार के इधर-उधर दौड़ाया । न्यायालय ने अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों को यह ठीक ही निदेश दिया है कि वे अनुकंपा नियुक्ति मंजूर करने के लिए नए सिरे से रिट याची के अनुरोध पर विचार करें । उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि आक्षेपित निर्णय पूर्णतया विधिक और सुआधारित है और उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । तद्नुसार अपील सभी संबंधित सिविल प्रकीर्ण आवेदनों सहित और खर्चों के साथ खारिज की जाती है जो कि 10,000/- रुपए नियत किया जाता है और जिसका अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी आज से दो मास की अवधि के भीतर रिट याची को संदाय करेंगे । (पैरा 5, 6, 7, 8, 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की लेटर्स पेटेन्ट अपील एस. डब्ल्यू. सं. 100.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के अधीन फाइल रिट याचिका से उद्भूत लेटर्स पेटेन्ट अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री पी. एन. रैना और श्रीमती सिन्धू शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ओ. पी. ठाकुर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मन्सूर अहमद मीर ने दिया ।

न्या. मन्सूर – यह अपील एस. डब्ल्यू. पी. सं. 912/2004, राहुल डोगरा बनाम पावर ग्रिड कारपोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड और अन्य वाले मामले में रिट न्यायालय द्वारा तारीख 15 फरवरी, 2011 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थी रिट-प्रत्यर्थियों को रिट याची के मामले पर निर्णय में दिए गए आधारों पर नियमों और विनियमों के अनुसार नए सिरे से अनुकंपा आधारों पर नियुक्ति मंजूर करने के लिए विचार करने का निदेश दिया गया है ।

2. पक्षकारों के पक्षकथन को समझने के लिए यह उचित होगा कि मामले की उस पृष्ठभूमि का उल्लेख किया जाए जिसके आधार पर वर्तमान अपील उद्भूत हुई है ।

3. स्वर्गीय श्री बोध राज की, जो पावर ग्रिड कारपोरेशन लिमिटेड (जिसे आगे संक्षेप में "निगम" कहा गया है) का एक कर्मचारी था, तारीख 1 अप्रैल, 2003 को पावर ग्रिड कालोनी, किशनपुर में उसके आवासीय क्वार्टर में मृत्यु हो गई थी । दुर्भाग्यपूर्ण दिवस को मृतक दोपहर का खाना खाने के लिए अपने निवास पर गया था जहां उसके वक्ष में दर्द उठा किंतु उसको अस्पताल में भर्ती किए जाने के पूर्व ही उस समय उसकी मृत्यु हो गई जब उसे निगम की एंबुलेंस में जिला अस्पताल, ऊधमपुर ले जाया जा रहा था । रिट याची जो हमारे समक्ष प्रत्यर्थी है, के पुत्र ने अनुकंपा आधारों पर अपनी नियुक्ति के लिए निगम के समक्ष आवेदन किया था । तथापि, उसका आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि उसके पिता की मृत्यु ड्यूटी पर हुई दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी ।

4. उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर रिट याची ने खारिजी आदेश को प्रश्नगत करते हुए रिट याचिका फाइल की । यहां यह उचित होगा कि खारिजी के आदेश को उद्धृत किया जाए :–

> "निगम को पावर ग्रिड में नियोजन पर विचार करने के संबंध में आपका तारीख 28 अप्रैल, 2003 का आवेदन प्राप्त हुआ है ।
>
> इस संबंध में यह सूचना दी जाती है कि हमने अपने स्तर पर मामले की परीक्षा की है और निगम की नीति के अनुसार हम केवल ऐसे कर्मचारियों के ऊपर निर्भर उनके कुटुम्ब के सदस्यों के आवेदन पर विचार करते हैं जिनकी ड्यूटी के दौरान दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई हो या स्थायी रूप से नि:शक्त हो गए हों ।

चूंकि कर्मचारी सं. 16389 स्वर्गीय बोध राज चालक की मृत्यु ड्यूटी पर दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई है इसलिए हम इस स्थिति में नहीं हैं कि पावर ग्रिड में अनुकंपा नियोजन के लिए आपके अनुरोध पर विचार किया जा सके ।"

5. खारिजी के आदेश का परिशीलन करने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति इस अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि रिट याची के मामले पर किसी भी प्रकार से विचार नहीं किया गया था । रिट याचिका में आक्षेपित तारीख 22 अगस्त, 2003 की संसूचना द्वारा यह सूचना दी गई थी कि अनुकंपा आधारों पर नियुक्ति के लिए उसके आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसके पिता की मृत्यु ड्यूटी पर दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी । अत: यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी स्पष्ट आदेश पारित किए बिना रिट याची को यहां से वहां दौड़ाते रहे ।

6. अपीलार्थी का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि मृतक निगम के नियोजन में था और दोपहर के खाने के अवकाश के दौरान उसके वक्ष में दर्द उठा और उसे निगम की एंबुलेंस में जिला अस्पताल, ऊधमपुर ले जाया जा रहा था जहां अस्पताल में भर्ती किए जाने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई ।

7. विचारार्थ यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों ने अपनी विधिक शक्ति के भीतर रिट याची के मामले पर विचार करने से इनकार किया है । इसका उत्तर निम्नलिखित कारणों से नकारात्मक है ।

8. अपीलार्थी नियमों और विनियमों के उपबंधों के निबंधनों में प्रत्यर्थी-रिट याची के दावे पर विचार करने के लिए और विस्तृत आदेश पारित करने के लिए विधिक रूप से बाध्यताधीन थे । तथापि, अपीलार्थी रिट-प्रत्यर्थियों ने विवेक का उपयोग किए बिना और मामले के गुण-दोष पर गहराई से विचार किए बिना इस एकमात्र आधार पर रिट याची के अनुरोध को खारिज कर दिया कि उसके पिता की मृत्यु दुर्घटना के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी ।

9. रिट याचिका पर किए गए आक्षेपों के पैरा 10 में अपीलार्थियों ने यह स्वीकार किया है कि वे उन कर्मचारियों के विधिक प्रतिनिधियों को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करते हैं जिनकी मृत्यु बीमारी के कारण हुई हो । यहां उक्त पैरा को उद्धृत करना सुसंगत होगा :–

"10. पैरा 10 की अन्तर्वस्तु सही न होने के कारण इनकार

किया जाता है । याची को यह कहने का अधिकार नहीं है कि सेवा के दौरान मृत्यु के मामले में अनुकंपा आधारों पर नियोजन सभी को दिया गया है । याची द्वारा उद्धृत मामले के संबंध में यह निवेदन किया जाता है कि निगम के अधिकारी श्री जी. सी. आनंद और श्रीमती परमजीत कौर पत्नी श्री दर्शन सिंह के मामले में अनुकंपा नियुक्ति इस कारण दी गई थी क्योंकि इन दोनों मामलों में मृत्यु ड्यूटी पर दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई थी । श्रीमती सीता शर्मा पत्नी स्वर्गीय सुभाष शर्मा का मामला एक ऐसा मामला था जहां मृतक की विधवा के पास आय और भरणपोषण का कोई स्रोत नहीं था । निगम के प्राधिकारियों ने उक्त मामला ऐसा विशेष मामला माना जिसमें निगम द्वारा विशेष रूप से विचार करने की आवश्यकता थी । याची का मामला श्री सुभाष शर्मा के मामले से पूर्णतया भिन्न है और किसी भी प्रकार से सुभाष शर्मा के मामले पर विचार विशेष मामले के रूप में किया गया था और इसलिए याची किसी भी आधार पर दावा नहीं कर सकता । श्रीमती रंजीत कौर के मामले के संबंध में यह निवेदन किया जाता है कि रंजीत कौर का पति श्रीनगर (कश्मीर) के ऐसे आतंकवाद प्रभावित क्षेत्र में नियुक्त था जहां वह अपने कुटुम्ब को नहीं रख सकता था जिसके कारण उसका स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ और अंततः बीमारी के कारण उसकी मृत्यु हो गई । उस मामले को भी निगम द्वारा एक अत्यंत विशेष मामला माना गया था । याची इन मामलों से कोई फायदा नहीं ले सकता । इस पैरे की शेष अन्तर्वस्तु अस्पष्ट है इसलिए इनकार किया जाता है ।"

10. अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी के अपने स्वयं के पक्षकथनानुसार उन्होंने रिट याची का दावा यांत्रिक रूप से और रिट याचिका में आक्षेपित संसूचना में दिए गए किसी न्यायोचित कारण के बिना अनुकंपा आधार पर याची की नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थी-रिट याची के मामले पर विचार करने से इनकार कर दिया । यह सुस्थापित विधिक स्थिति है कि अनुकंपा नियुक्ति अचानक वित्तीय कठिनाई से निपटने के लिए मृतक के कुटुम्बों को समर्थ बनाने के साथ नियुक्त करने के सामान्य नियम के अपवाद में की जाती है । तथापि, यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों ने प्रत्यर्थी-याची को अनुकंपा आधारों पर नियुक्त न करते हुए बिना किसी आधार के इधर-उधर दौड़ाया । न्यायालय ने अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थियों को यह ठीक ही निदेश दिया है कि वे अनुकंपा नियुक्ति मंजूर करने के लिए नए सिरे से रिट याची के अनुरोध पर विचार करें ।

11. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि आक्षेपित निर्णय पूर्णतया विधिक और सुआधारित है और उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । तद्नुसार अपील सभी संबंधित सिविल प्रकीर्ण आवेदनों सहित और खर्चों के साथ खारिज की जाती है जो कि 10,000/- रुपए नियत किया जाता है और जिसका अपीलार्थी-रिट प्रत्यर्थी आज से दो मास की अवधि के भीतर रिट याची को संदाय करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 69 **जम्मू-कश्मीर**

आर. डी. विश्वकर्मा (डा.)

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 14 मार्च, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार और न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 [सपठित नियुक्ति, प्रोन्नति ज्येष्ठता आदि नियम, 1971 का नियम 10, 11 और 12] – विभाग में उच्चतर पद पर नियुक्ति – परिवीक्षा – सेवक द्वारा परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी न करने के कारण प्रत्यावर्तन आदेश – आदेश को कलंकित करने वाले आदेश के रूप में मानकर आक्षेपित किया जाना – जहां आदेश में कलंकित करने वाले शब्दों का उल्लेख न हो वहां ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 [सपठित नियुक्ति, प्रोन्नति, ज्येष्ठता आदि नियम, 1971 – नियम 12] – उच्चतर पद पर नियुक्ति – परिवीक्षा अवधि सफ़लतापूर्वक पूरी न की जानी – प्रत्यावर्तन आदेश – उच्च न्यायालय के समक्ष याचिका – विशेष इजाज़त याचिका में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकरण की अधिकारिता का उल्लेख – इस आधार पर सेवक का वेतन रोका जाना – विभाग इस आधार पर सेवक को वेतन देने से इनकार नहीं कर सकता ।

ये दोनों रिट याचिकाएं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और जम्मू-कश्मीर संविधान की धारा 103 के अधीन फाइल की गई हैं जिनमें केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, चण्डीगढ़ न्यायपीठ (संक्षेप में 'अधिकरण') द्वारा 2002 के टी.ए.-54/जे.के. में तारीख 20 मई, 2003 को पारित आदेश को प्रश्नगत किया गया है । याचिकाओं में से एक याचिका अर्थात् 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 1008 मूल आवेदक-रिट याची द्वारा फाइल की गई है और दूसरी भारत संघ और इसके अधिकारियों द्वारा फाइल की गई है जिसकी सं. 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2034 है । याचिकाएं खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पत्र के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि उसकी परिवीक्षा की अवधि तारीख 7 अप्रैल, 1999 को समाप्त होनी थी और प्रत्यर्थी सं. 3 केंद्रीय विद्यालय संगठन ने उसी परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके कार्य और आचरण को दृष्टिगत करते हुए उसे सेवा से निर्मोचित करते हुए तारीख 5 अप्रैल, 1999 का आदेश पारित किया था । भारत संघ की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ स्थायी काउंसेल श्रीमती गोस्वामी ने यह दलील दी कि परिवीक्षा अवधि के दौरान किसी कर्मचारी के कार्य और आचरण के निर्धारण की अन्य कोई रीति नहीं हो सकती । विद्वान् काउंसेल के अनुसार तारीख 7 अप्रैल, 1999 का आदेश स्पष्टत: ऐसी कोई राय अभिव्यक्त नहीं करता और इसलिए इसे एक कलंकित करने वाले आदेश के रूप में नहीं समझा जा सकता । इसके द्वारा मात्र यह उल्लेख करते हुए सहायक आयुक्त के पद से उसकी सेवा समाप्त करने का आदेश किया गया है कि उसकी परिवीक्षा की अवधि 3 वर्ष तक बढ़ाए जाने योग्य है और तद्नुसार किया गया था । तद्नुसार उसकी परिवीक्षा अवधि तारीख 7 अप्रैल, 1999 को समाप्त हो गई थी । श्रीमती गोस्वामी ने यह भी दलील दी कि पत्रों में कलंक लगाने वाला कुछ भी नहीं है और उनके द्वारा मूल आवेदक-रिट याची को उसके कार्य और आचरण में सुधार करने की सलाह दी गई थी । प्रत्यर्थी-केन्द्रीय विद्यालय संगठन द्वारा मूल आवेदक-रिट याची को परिवीक्षा अवधि को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करने का यही एक तरीका था । तथापि, दुर्भाग्य से वह इसे पूरा करने में असफल रहा । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अधिकरण द्वारा पारित आदेश में ऐसी कोई विधिक अनियमितता नहीं है जिससे कि इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो । मूल आवेदक-रिट याची को केन्द्रीय विद्यालय संगठन

में सहायक आयुक्त के पद पर इस विनिर्दिष्ट शर्त के साथ चयनित और नियुक्त किया गया था कि वह 2 वर्ष की अवधि तक परिवीक्षा पर रहेगा जो कि एक अन्य वर्ष के लिए बढ़ाए जाने योग्य थी । सहायक आयुक्त का पद एक सीधा काडर पद है और इस संबंध में प्रत्यर्थियों ने नियम विरचित किए हैं जिन्हें नियुक्ति, प्रोन्नति, ज्येष्ठता आदि नियम, 1971 कहा जाता है । ये नियम कानूनी प्रकृति के हैं और ये नियमों के नियम 22 द्वारा केन्द्रीय विद्यालय संगठन के बोर्ड में निहित शक्ति के आधार पर विरचित किए गए हैं । नियम 10 और 11 विज्ञापन के अतिरिक्त परिवीक्षा पर व्यक्तियों के पुष्टिकरण के बारे में भी उपबंध करते हैं । परिवीक्षा के संबंध में विधि पूर्णतया सुस्थापित है । कलंक लगने की संकल्पना स्वत: निर्मोचन के आदेश से प्रकट होनी चाहिए और आदेश में स्पष्टत: ऐसे शब्दों का उल्लेख होना चाहिए जो कलंक लगाने वाले हों और संविधान के अनुच्छेद 311 के उपबंधों को आकर्षित करते हों । कार्य में सुधार करने की अपेक्षा या सक्षमता की कमी से संबंधित किए गए टिप्पण किसी कर्मचारी के कार्य के संबंध में पाए गए हों और उसके कार्य के निर्धारण के संदर्भ में हों, जो ऐसे दुराचार के अभिकथनों के बराबर नहीं हों, जो ऐसे किसी कर्मचारी पर कोई कलंक डालते हों । यदि न्यायालय तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 के स्पष्ट आदेश की परीक्षा करता है तो इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिससे मूल आवेदक-रिट याची पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना उपदर्शित होता हो । निर्मोचन के आदेश से केवल यह उपदर्शित होता है कि परिवीक्षा अवधि के दौरान उसकी सेवाएं नियुक्ति पत्र के पैरा 3(ii) को दृष्टिगत करते हुए समाप्त की गई थीं । तारीख 17 फरवरी, 1998, 7 अप्रैल, 1998 और 6 अक्तूबर, 1998 (उपाबंध एफ, जी और एच) के पूर्वतर पत्रों में भी ऐसा कुछ नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाए कि आदेश से ऐसा कोई कलंक स्पष्ट होता है जिसके आधार पर यह राय बनाई जा सके कि आदेश शास्तिक प्रकृति का है और इसलिए जांच की जानी चाहिए थी । इसके अतिरिक्त मूल आवेदक-रिट याची ने उक्त पद धारित करने के लिए अभी तक कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है और किसी भी प्रकार से उसे केन्द्रीय विद्यालय संगठन के प्रधानाचार्य के पद पर वापस भेजा गया था जिसके बारे में यह उपधारित किया जा सकता है कि उसने इस पर धारणाधिकार प्राप्त किया है । यदि इन पत्रों का उसकी सेवा वृत्ति पर कोई प्रभाव होता तो उसे प्रधानाचार्य के रूप में पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता । तारीख 17 फरवरी, 1998, 7 अप्रैल, 1998 और 6 अक्तूबर, 1998 के पत्रों (उपाबंध एफ, जी और एच)

का उसकी सेवा वृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । (पैरा 5, 9, 10, 12 और 13)

2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2034 में प्रत्यर्थी-याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मूल आवेदक-रिट याची डा. आर. डी. विश्वकर्मा का कोई वेतन संदेय नहीं है जो कि केन्द्रीय विद्यालय संगठन के सहायक आयुक्त के पद से संबंधित है । उपर्युक्त दलील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश का अनुपालन किया जाना आवश्यक था । न्यायालय का यह मत है कि अधिकरण ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी-विभाग ने डा. आर. डी. विश्वकर्मा के वेतन को रोकने में विधि के आयामों के अनुसार कार्य नहीं किया है जिसे कि वे पहले ही दे चुके हैं और इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि अधिकरण को अधिकारिता थी और मामला अधिकरण को स्थानांतरित किया जाना चाहिए था, उच्च न्यायालय का अंतरिम आदेश अधिकारिता रहित था क्योंकि अंतरिम आदेश सतत् रूप से प्रवर्तन में था, दलील ठीक ही खारिज की गई है । अत: प्रत्यर्थी-विभाग की अधिकारिता प्रवर्तन के आधार पर मूल आवेदक-रिट याची को वेतन से इनकार करने की कार्यवाही पूर्णतया अन्यायपूर्ण थी और उच्च न्यायालय के आदेश के अतिक्रमण के बराबर थी । न्यायालय को अधिकरण द्वारा मूल आवेदक-रिट याची के वेतन के संदाय के संबंध में अभिव्यक्त मत में कोई विधिक अनियमितता प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 569 : **पंजाब राज्य** बनाम **सुखविन्दर सिंह** ;	13
[2003]	(2003) 5 एस. सी. सी. 580 : **कमाडेंट 11वीं बटालियन, ए. पी. विशेष पुलिस (आईआर), कुडप्पा, कुडप्पा जिला** बनाम **शंकर नायक** ;	12
[2003]	(2003) 2 एस. सी. सी. 433 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **ए. पी. बाजपेयी और अन्य** ;	12

[2002]	(2002) 10 एस. सी. सी. 394 : **शैलजा शिवाजीराप पाटिल** बनाम **प्रेसीडेन्ट मानीय खसदार यूजीएस संस्था और अन्य** ;	12
[2000]	(2000) 3 एस. सी. सी. 239 : **वी. पी. आहूजा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	8,14
[1999]	(1999) 3 एस. सी. सी. 60 : **डी. पी. बनर्जी** बनाम **एस. एन. बोस नेशनल सेन्टर फार बेसिक साइंसिज** ;	8,14
[1999]	(1999) 2 एस. सी. सी. 21 : **राधेश्याम गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य एग्रो इंडस्ट्रीज कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य** ;	12
[1991]	(1991) 1 एस. सी. सी. 691 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **कौशल किशोर शुक्ला** ;	13
[1983]	(1983) 2 एस. सी. सी. 217 : **अजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	13
[1974]	ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 2192 : **शमशेर सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ।	12

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 1008, 2034, 2004 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 1549 और 2003 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 2230.

संविधान 1950 के अनुच्छेद 226 और जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के अधीन रिट याचिकाएं और आवेदन ।

याची की ओर से श्री एम. के. रैना

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री नीरु गोस्वामी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार ने दिया ।

मु. न्या. कुमार – ये दोनों रिट याचिकाएं भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 और जम्मू-कश्मीर संविधान की धारा 103 के अधीन फाइल की गई हैं जिनमें केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, चण्डीगढ़ न्यायपीठ (संक्षेप में 'अधिकरण') द्वारा 2002 के टी.ए.-54/जे.के. में तारीख 20 मई, 2003 को पारित आदेश को प्रश्नगत किया गया है । याचिकाओं में से एक याचिका अर्थात् 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 1008 मूल आवेदक-रिट याची द्वारा फाइल की गई है और दूसरी भारत संघ और इसके अधिकारियों द्वारा फाइल की गई है जिसकी सं. 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2034 है । अधिकरण ने अपने आक्षेपित आदेश द्वारा तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 को पारित उस आदेश की पुष्टि की है जिसके द्वारा मूल आवेदक-डा. आर. डी. विश्वकर्मा को इस आधार पर सेवा से निर्मोचित किया गया है कि उसका कार्य और आचरण संतोषजनक नहीं था और इसलिए उसे केंद्रीय विद्यालय संगठन के प्रधानाचार्य के मूल पद पर प्रत्यावर्तित किया गया है । विधि का मूलभूत प्रश्न यह है कि 'क्या तथ्यत: निर्मोचन का आदेश ऐसा पदच्युति का आदेश है जो उस पर धब्बा (कलंक) डालने वाला है और जांच की आवश्यकता है ।' भारत संघ ने वेतन अधिनिर्णीत किए जाने के विरुद्ध याचिका फाइल की है जो अनुतोष आवश्यक रूप से अधिकरण में याचिका स्थानांतरित किए जाने से पूर्व इस उच्च न्यायालय के अंतरिम आदेश द्वारा दिया गया है ।

2. संविवाद पर इसके उचित परिप्रेक्ष्य में विचार करने के लिए प्रथमतः कतिपय तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है । प्रत्यर्थी सं. 3 - केंद्रीय विद्यालय संगठन ने तारीख 10 नवंबर, 1995 को एक विज्ञापन जारी किया था जिसमें उसने अनुसूचित जनजाति कोटा से सहायक आयुक्त के एक पद को भरने के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे । मूल आवेदक-डा. विश्वकर्मा उस समय प्रत्यर्थी सं. 3 केंद्रीय विद्यालय संगठन में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य कर रहा था । वह सहायक आयुक्त के सीधा कोटा पद के लिए पात्र था और उसने आवेदन किया था । उसका चयन किया गया था और उसे तारीख 20 मार्च, 1996 के नियुक्ति पत्र (उपाबंध-बी.) द्वारा नियुक्त किया गया था । नियुक्ति के निबंधनों और शर्तों के अनुसार मूल आवेदक-रिट याची को दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर रहना था जो कि तीन वर्ष के लिए विस्तारित किए जाने योग्य थी । उसे स्थायी रिक्ति की उपलब्धता के अनुसार अपनी बारी पर उक्त परिवीक्षा अवधि के सफलतापूर्वक पूरा करने पर नियमित किया जाना था । मूल आवेदक-रिट याची ने केंद्रीय विद्यालय संगठन में सहायक आयुक्त के पद पर तारीख 8

अप्रैल, 1996 को पदभार ग्रहण किया था । जैसाकि ऊपर कहा गया है कि याची की ओर से परिवीक्षा अवधि विस्तारित करने के दस्तावेजों का निर्देश किया गया है जो कि तारीख 17 फरवरी, 1998 के पत्र के स्पष्ट निर्देश के विरुद्ध था । यह पत्र इस प्रकार है :–

"केंद्रीय विद्यालय संगठन,
18 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली - 110016

एफ. सं. 3-1/96-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट-I) तारीख 17/2/98

ज्ञापन

डा. आर. डी. विश्वकर्मा को तारीख 20 मार्च, 1996 के कार्यालय ज्ञापन सं. एफ. 1-33/93-के.वी.एस. (ई.-I) द्वारा आरंभतः दो वर्ष की परिवीक्षा पर सहायक आयुक्त के पद पर नियुक्त किया गया था ।

सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवीक्षा के प्रथम वर्ष के दौरान डा. विश्वकर्मा के कार्य और आचरण का निर्धारण किया गया और सक्षम प्राधिकारी ने यह पाया कि वह दिए गए कार्य को करने के लिए योग्य नहीं है । एतद्द्वारा विश्वकर्मा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शेष अवधि के दौरान अपने कार्य में सुधार करे । (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

(डी. के. श्रीवास्तव)

संयुक्त आयुक्त (प्रशा.)"

3. प्रत्यर्थी-केंद्रीय विद्यालय संगठन ने मूल आवेदक-रिट याची के कार्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् उसकी शेष परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके कार्य में सुधार करने की आवश्यकता पर बल दिया और तारीख 7 अप्रैल, 1998 के पत्र द्वारा परिवीक्षा अवधि 7 अक्तूबर, 1998 तक विस्तारित कर दी । उक्त पत्र इस प्रकार है :–

"केंद्रीय विद्यालय संगठन,
18 इंस्टीट्यूशनल एरिया,

शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली - 110016

एफ. सं. 3-1/96-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट- I) तारीख 7/4/98

ज्ञापन

डा. आर. डी. विश्वकर्मा को दो वर्ष की परिवीक्षा पर तारीख 8 अप्रैल, 1996 से सहायक आयुक्त के पद पर नियुक्त किया गया था । परिवीक्षा अवधि के दौरान डा. आर. डी. विश्वकर्मा के कार्य और क्षमता का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी ने यह विनिश्चय किया है कि डा. आर. डी. विश्वकर्मा की परिवीक्षा अवधि तारीख 7 अक्तूबर, 1998 तक विस्तारित की जाए जो तद्नुसार तारीख 7 अक्तूबर, 1998 तक विस्तारित की जाती है ।

(डी. के. श्रीवास्तव)
वाइस-चेयरमैन के. वी. एस. की ओर से
संयुक्त आयुक्त (प्रशा.)"

4. मूल आवेदक-रिट याची को उसकी जानकारी में यह बात लाते हुए दूसरा पत्र भेजा गया था कि उसका कार्य और आचरण संतोषजनक नहीं था और वह कोई उल्लेखनीय सुधार दर्शित करने में असमर्थ रहा है । उसे अपने कार्य में सुधार करने की सलाह दी गई थी । तारीख 6 अक्तूबर, 1998 का उपर्युक्त पत्र इस प्रकार है :-

"केंद्रीय विद्यालय संगठन,
18 इंस्टीट्यूशनल एरिया
शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली - 110016

एफ. सं. 3-1/96-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट- I) तारीख 6/10/98

ज्ञापन

डा. आर. डी. विश्वकर्मा को आरंभतः दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर सहायक आयुक्त के पद पर नियुक्त किया गया था जो विस्तारित किए जाने योग्य थी और जिसे तारीख 20 मार्च, 1996 के कार्यालय

ज्ञापन द्वारा विस्तारित किया गया था । इसके पश्चात् परिवीक्षा अवधि तारीख 7 अक्तूबर, 1998 तक विस्तारित की गई थी । अब यह विनिश्चय किया गया है कि परिवीक्षा की अवधि तारीख 7 अप्रैल, 1999 तक विस्तारित की जाए ।

सक्षम प्राधिकारी द्वारा डा. विश्वकर्मा के कार्य और आचरण का मूल्यांकन किया गया और उसने यह पाया कि उसका कार्य और आचरण संतोषजनक नहीं है और वह अपने कार्य और आचरण में किसी प्रकार का उल्लेखनीय सुधार दर्शित करने में असमर्थ रहा है । एतद्द्वारा उससे परिवीक्षा अवधि के दौरान अर्थात् तारीख 7 अप्रैल, 1999 तक अपने कार्य में सुधार करने की अपेक्षा की जाती है ।" (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है ।)

5. उपर्युक्त पत्र के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि उसकी परिवीक्षा की अवधि तारीख 7 अप्रैल, 1999 को समाप्त होनी थी और प्रत्यर्थी सं. 3 केंद्रीय विद्यालय संगठन ने उसी परिवीक्षा अवधि के दौरान उसके कार्य और आचरण को दृष्टिगत करते हुए उसे सेवा से निर्मोचित करते हुए तारीख 5 अप्रैल, 1999 का आदेश पारित किया था । तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 का आदेश पढ़ने में दिलचस्प है और इस प्रकार है :–

"केंद्रीय विद्यालय संगठन,

18 एफ. सं. 133/93-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट-I) तारीख 5/4/99

कार्यालय आदेश

1. डा. आर. डी. विश्वकर्मा को इस कार्यालय के पत्र सं. एफ. 1-33/93-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट-I) तारीख 20/3/1996 द्वारा दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर केंद्रीय विद्यालय संगठन जम्मू क्षेत्र में सहायक आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था जो अवधि तीन वर्ष के लिए विस्तारित किए जाने योग्य थी । तद्नुसार उसकी परिवीक्षा अवधि इस कार्यालय के पत्र सं. एफ. 3-1/96-के.वी.एस. (एस्टेब्लिशमेंट-I) तारीख 06/10/1998 द्वारा 7 अप्रैल, 1999 तक विस्तारित की गई थी ।

2. उपर्युक्त नियुक्ति प्रस्थापना पत्र के पैरा 3(ii) के अनुसरण में सक्षम प्राधिकारी ने डा. विश्वकर्मा की सहायक

आयुक्त, केंद्रीय विद्यालय संगठन के रूप में सेवाएं तारीख 7 अप्रैल, 1999 (अपराह्न) से समाप्त कर दी थीं । सक्षम प्राधिकारी ने यह भी निदेश दिया था कि वह एक मास की अवधि के लिए अपने वेतन के समानांतर राशि और भत्ते पाने का हकदार होगा जिसे उसने सूचना की अवधि के बदले में सहायक आयुक्त, केंद्रीय विद्यालय संगठन के रूप में अपनी सेवाएं समाप्त करने से ठीक पूर्व आहरित कर लिया था ।

3. डा. विश्वकर्मा को सहायक आयुक्त के पद पर उसकी सेवाएं समाप्त करने पर केंद्रीय विद्यालय संगठन के प्रधानाचार्य के रूप में माना गया जिस पद को वह सहायक आयुक्त के रूप में अपनी नियुक्ति से पूर्व धारित कर रहा था ।"

6. मूल आवेदक-रिट याची ने अधिकरण के समक्ष दो दलीलें दी हैं । यह दलील दी गई है कि तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 का आदेश उसको कलंकित करता है और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 3 - केंद्रीय विद्यालय संगठन से यह अपेक्षित था कि वह नियमित विभागीय जांच कराते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करे । दूसरी दलील यह दी गई है कि मूल आवेदक-रिट याची सहायक आयुक्त के पद पर नियत वेतन और भत्ते आहरित करने का हकदार है । अधिकरण ने दलील खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि मूल आवेदक-रिट याची की सेवा समाप्त करते हुए निर्मोचित करने का आदेश स्पष्टतया एक सेवा समाप्ति का आदेश था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि इस प्रकार के मामले में नियमित विभागीय जांच कराने की कोई विधिक बाध्यता नहीं है क्योंकि दुराचरण का कोई अभिकथन नहीं किया गया था और आदेश कलंकित करने वाली प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है । केंद्रीय विद्यालय संगठन के उपाध्यक्ष के विरुद्ध किए गए असद्भावना के कथनों को भी खारिज किया गया था । अधिकरण ने अभिलेख का सम्यक्त: निरीक्षण करने के पश्चात् मत व्यक्त करते हुए निम्नलिखित पैरा से असहमति व्यक्त की :–

".....हमने अपने इस समाधान के लिए कि यह एक ऐसा मामला नहीं था जिसमें आवेदक के विरुद्ध पक्षपात किया गया हो, हमारे द्वारा उसकी परिवीक्षा अवधि से संबंधित मूल फाइल मंगाई

गई । हमने फाइल (पत्रावली) की परीक्षा की जो यद्यपि आवेदक से संबंधित गोपनीय है । तथापि, इससे स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि न केवल तत्समय के केन्द्रीय विद्यालय के संगठन के आयुक्त श्री एच. एम. कैरी ने तारीख 24 मार्च, 1999 को आवेदक के कार्य के बारे में असंतोष अभिलिखित किया अपितु यह भी उल्लेख किया कि आवेदक का कार्य और क्षमता के संबंध में उसकी तरह पूर्वतर दो आयुक्तों अर्थात् श्रीमती लिज़ी जेकब और आर. एस. पांडेय ने भी सुधार की जरूरत पर बल दिया है । आवेदक के इस कथन के खंडन के लिए कि उसके उच्चतर अधिकारी अर्थात् संयुक्त आयुक्त ने उसके संबंध में विद्वेष से अभिसाक्ष्य दिया है, प्रत्यर्थियों ने फाइल का निर्देश करते हुए यह उपदर्शित किया है कि तत्समय के आयुक्त द्वारा तारीख 24 मार्च, 1999 को एक टिप्पण करने के पश्चात् उसको प्रत्यावर्त करने के विनिश्चय पर केन्द्रीय विद्यालय के संगठन के उपाध्यक्ष द्वारा विचार किया गया है जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह आवेदक के विरुद्ध विद्वेष रखते थे । हमने स्वयं भी अपना यह समाधान करने के लिए फाइल का निरीक्षण किया कि क्या सम्पूर्ण कार्यवाही सुव्यवस्थित रीति में की गई है । हमने उक्त फाइल से यह पाया कि तारीख 12 नवंबर, 1997 को श्री डी. के. श्रीवास्तव ने, जिन्होंने सहायक आयुक्त के कार्य का पुनर्विलोकन किया था, उसे यह उल्लेख करते हुए लिखा था कि उनके द्वारा तारीख 5 नवंबर, से 8 नवंबर, 1997 तक जम्मू में निरीक्षण करने के दौरान उसका सहायक आयुक्त के रूप में कार्य असंतोषप्रद पाया गया और उन्होंने पुन: आवेदक को अपने कार्य में सुधार करने के लिए कतिपय निदेश जारी किए । परिवीक्षा अवधि पर दूसरी रिपोर्ट तारीख 5 दिसंबर, 1997 को अभिलिखित की गई थी जिसमें यह कहा गया है कि वह दिए गए कार्यों को पूरा करने में समर्थ नहीं है । इसके पश्चात् यह रिपोर्ट भी संयुक्त आयुक्त द्वारा तारीख 17 जुलाई, 1998 को आवेदक को संसूचित की गई थी । इसके पश्चात् तारीख 31 मार्च, 1998 को भी उसके कार्य के बारे में रिपोर्ट करने वाले अधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि उसके सहायक आयुक्त के कार्य में सारभूत सुधार किए जाने की आवश्यकता है और उसके द्वारा अधीक्षणीय और कठिनाईपूर्ण मामलों में नियंत्रण के लिए

भी सुधार किए जाने की आवश्यकता है । उक्त निर्धारण रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि उसके कार्य में आई कमियां मौखिक रूप से भी और लिखित रूप से भी उसकी जानकारी में लाई गई थीं और उसे निरंतर रूप से बताया गया था । हम उसके विरुद्ध विभिन्न रिपोर्टों पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि मामले में यह उपदर्शित करना पर्याप्त है कि प्रत्यर्थी-विभाग (न कि केवल संयुक्त आयुक्त ने) सम्पूर्णत: अपने विवेक का प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला है कि आवेदक की परिवीक्षा अवधि में किया गया कार्य सन्तोषप्रद नहीं था.....।" (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

7. तथापि, विनिर्दिष्ट अवधि के लिए सहायक आयुक्त के रूप में उसके वेतन की हकदारी के संबंध में उसके अनुरोध को स्वीकार किया गया था क्योंकि माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह कहते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पेश किया गया था कि उच्च न्यायालय को याचिका ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी जिसे परिणामत: अधिकरण के समक्ष स्थानांतरित किया गया था । अधिकरण प्रत्यर्थी केन्द्रीय विद्यालय संगठन की इस दलील से सहमत नहीं था कि अंतरिम आदेश अधिकारिता के बिना आदेश होने के कारण उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती । अधिकरण द्वारा उपर्युक्त मताभिव्यक्ति मूल आवेदक-रिट याची द्वारा सहायक आयुक्त के पद पर किए गए कार्य के संबंध में मजदूरी अधिनिर्णीत करने के लिए की गई थी जो इस प्रकार है :–

".....अब यह प्रश्न रह जाता है कि क्या आवेदक उस अवधि के लिए सहायक आयुक्त के रूप में वेतन पाने का हकदार होगा जिस तारीख को उच्चतम न्यायालय ने अपने आदेश की तारीख तक मामले की अधिकारिता में परिवर्तन के संबंध में आदेश किया था । प्रत्यर्थियों द्वारा यह दलील दी गई है कि चूंकि उच्च न्यायालय को मामले को सुनने की अधिकारिता नहीं थी इसलिए वह अंतरिम आदेश पारित नहीं कर सकता था और इसलिए अधिकारिता के बिना पारित आदेश को क्रियान्वित करने की आवश्यकता नहीं थी । हम प्रत्यर्थियों की उपर्युक्त दलील से पूर्णतया सहमत हैं । उच्चतम न्यायालय ने केवल यह कहा है कि मामला अधिकरण को भेजा जाना चाहिए । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि उसने संविधान के अनुच्छेद 226

के अधीन माननीय उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता को विवर्जित कर दिया था । हमारे आदेश के पश्चात् भी इसे अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया जा सकता है । उच्च न्यायालय की अधिकारिता प्राथमिक है । उच्चतम न्यायालय का यह अर्थ था कि मामला प्रथमदृष्ट्या अधिकरण के समक्ष चलाए जाने योग्य है और यदि याची/आवेदक अधिकरण के आदेश से व्यथित होता है तो वह उच्च न्यायालय में समावेदन कर सकता है । हम इस दलील से सहमत नहीं हो सकते कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश किसी अधिकारिता के बिना किया गया था । हम अंतरिम आदेश के गुणदोष या तथ्यों पर विचार नहीं कर रहे हैं क्योंकि यह आदेश सभी संबंधित प्राधिकारियों पर आबद्धकर है । हमें प्रत्यर्थी-विभाग द्वारा की गई वेतन रोकने की कार्रवाई में कोई तर्कसंगतता प्रतीत नहीं होती क्योंकि वे इसे आवेदक को पहले ही दे चुके थे और मात्र इस कारण कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मामला अधिकरण के समक्ष फाइल किया जाना चाहिए । प्रत्यर्थियों ने आवेदक का वेतन इसलिए संदत्त नहीं किया क्योंकि वह कार्यालय में हाजिर नहीं हुआ था । प्रथमत: आवेदक ने यह दलील दी कि उसे बैठने के लिए कोई कक्ष या कोई स्थान नहीं दिया गया था और इसलिए यह कहना सही नहीं था कि वह कार्यालय में हाजिर नहीं हुआ । इसके अतिरिक्त उसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से यह निदेश दिया गया था कि वह केन्द्रीय विद्यालय संगठन से संबंधित किसी फाइल पर विचार न करे और इसलिए यदि वह कार्यालय जाता तो वह क्या कार्य कर सकता था ? अत: यह कहना सही नहीं है कि आवेदक को कार्यालय में हाजिर न होने के कारण वेतन संदत्त नहीं किया जा सकता । तथ्यत: उच्चतम न्यायालय के आदेशों से प्रत्यर्थियों द्वारा अंतरिम आदेश सम्पूर्णतया निष्पादित किया जाना चाहिए था और उच्चतम न्यायालय के आदेश के पश्चात् ही प्रथमत: मामला अधिकरण के समक्ष जाना चाहिए था और उसके पश्चात् ही प्रत्यर्थी उसके वेतन का संदाय रोक सकते थे । इस आशय का एक टिप्पण भी तारीख 25 सितंबर, 2002 को किया गया था जो उसकी वैयक्तिक फाइल में पाया गया है । हमें खेद है कि प्रत्यर्थी-विभाग का विधि द्वारा अधिकारिता के प्रवर्तन के आधार पर आवेदक को वेतन देने से इनकार करने की कार्रवाई विधित: अन्यायपूर्ण है और यह उच्च न्यायालय के आदेश की अवमानना के

बराबर है ।"

8. मूल आवेदक-रिट याची के विद्वान् काउंसेल श्री ए. के. रैना ने यह दलील दी है कि तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 का आदेश कलंकित करने वाले आदेश के रूप में समझा जाना चाहिए । आदेश में प्रथमत: यह कहा गया है कि उसे केन्द्रीय विद्यालय संगठन के प्रधानाचार्य के पद पर प्रत्यावर्तित किया जाता है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार पूर्वतर पत्र में ऐसे शब्दों का उल्लेख किया गया था जो अधिकारी की सक्षमता को प्रदर्शित करते हैं । उदाहरण के लिए 17 फरवरी, 1998 के पत्र में जो निर्देश किया गया है उससे यह उपदर्शित होता है कि याची दिए गए कार्य को पूरा करने में समर्थ नहीं है । इसी प्रकार 'कार्य और आचरण संतोषप्रद नहीं है' शब्द उसके द्वारा कर्तव्य के निर्वहन के लिए उसकी सक्षमता को भी प्रदर्शित करते हैं । श्री रैना ने यह दलील दी कि यह मूल आवेदक-रिट याची के भविष्य पर एक धब्बा डालने के बराबर है और इसलिए नियमित विभागीय जांच कराए जाने की आवश्यकता थी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार किसी अधिकारी को परिवीक्षा अवधि के दौरान निर्मुक्त करना उसकी पदच्युति के लिए एक कारण नहीं हो सकता क्योंकि विभागीय जांच में कदाचार को साबित किए जाने की आवश्यकता है । श्री रैना ने अपनी दलील के समर्थन में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **डी. पी. बनर्जी** बनाम **एस. एन. बोस नेशनल सेन्टर फार बेसिक साइंसिज़**[1] और **वी. पी. आहूजा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों के दो निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 को पारित निर्मोचन का आदेश स्पष्टतया कलंकित करने वाला और दंडात्मक है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार आदेश की एकल रूप में परीक्षा नहीं की जानी चाहिए और इसे क्रमश: तारीख 17 फरवरी, 1998, (उपाबंध-एफ) तारीख 7 अप्रैल, 1998 (उपाबंध-जी) तारीख 6 अक्तूबर, 1998 (उपाबंध-एच) के तीन पूर्वतर पत्रों के साथ पढ़े जाने की आवश्यकता है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार इन पत्रों का साथ-साथ परिशीलन करने का संयुक्त प्रभाव यह होगा कि मूल आवेदक-याची समुचित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहा है और इसलिए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण किए जाने की आवश्यकता थी । विद्वान् काउंसेल ने **वी. पी. आहूजा** (उपरोक्त) वाले मामले में

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 60.

[2] (2000) 3 एस. सी. सी. 239.

दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि 'प्रशासनिक रूप से और तकनीकी रूप से कर्तव्यों के पालन' में विफलता पद का प्रयोग स्पष्टतया कलंकित करने वाला और दंडात्मक माना जाना चाहिए ।

9. भारत संघ की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ स्थायी काउंसेल श्रीमती गोस्वामी ने यह दलील दी कि परिवीक्षा अवधि के दौरान किसी कर्मचारी के कार्य और आचरण के निर्धारण की अन्य कोई रीति नहीं हो सकती । विद्वान् काउंसेल के अनुसार तारीख 7 अप्रैल, 1999 का आदेश स्पष्टत: ऐसी कोई राय अभिव्यक्त नहीं करता और इसलिए इसे एक कलंकित करने वाले आदेश के रूप में नहीं समझा जा सकता । इसके द्वारा मात्र यह उल्लेख करते हुए सहायक आयुक्त के पद से उसकी सेवा समाप्त करने का आदेश किया गया है कि उसकी परिवीक्षा की अवधि 3 वर्ष तक बढ़ाए जाने योग्य है और तद्नुसार किया गया था । तद्नुसार उसकी परिवीक्षा अवधि तारीख 7 अप्रैल, 1999 को समाप्त हो गई थी । श्रीमती गोस्वामी ने यह भी दलील दी कि पत्रों में कलंक लगाने वाला कुछ भी नहीं है और उनके द्वारा मूल आवेदक-रिट याची को उसके कार्य और आचरण में सुधार करने की सलाह दी गई थी । प्रत्यर्थी-केन्द्रीय विद्यालय संगठन द्वारा मूल आवेदक-रिट याची को परिवीक्षा अवधि को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करने का यही एक तरीका था । तथापि, दुर्भाग्य से वह इसे पूरा करने में असफल रहा ।

10. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् हमारा यह सुविचारित मत है कि अधिकरण द्वारा पारित आदेश में ऐसी कोई विधिक अनियमितता नहीं है जिससे कि इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो । मूल आवेदक-रिट याची को केन्द्रीय विद्यालय संगठन में सहायक आयुक्त के पद पर इस विनिर्दिष्ट शर्त के साथ चयनित और नियुक्त किया गया था कि वह 2 वर्ष की अवधि तक परिवीक्षा पर रहेगा जो कि एक अन्य वर्ष के लिए बढ़ाए जाने योग्य थी । सहायक आयुक्त का पद एक सीधा काडर पद है और इस संबंध में प्रत्यर्थियों ने नियम विरचित किए हैं जिन्हें नियुक्ति, प्रोन्नति, ज्येष्ठता आदि नियम, 1971 कहा जाता है । ये नियम कानूनी प्रकृति के हैं और ये नियमों के नियम 22 द्वारा केन्द्रीय विद्यालय संगठन के बोर्ड में निहित शक्ति के आधार पर विरचित किए गए हैं । नियम 10 और 11 विज्ञापन के अतिरिक्त परिवीक्षा पर व्यक्तियों के पुष्टिकरण के बारे में भी उपबंध करते हैं । विज्ञापन में

उल्लिखित निबंधन और शर्तें नियम 10 और 11 की अक्षरश: प्रति है जो इस प्रकार है :–

"**10. परिवीक्षा** –

(1) प्रत्येक सीधी भर्ती व्यक्ति को आरंभत: परिवीक्षा पर नियुक्त किया जाएगा और ऐसी परिवीक्षा की अवधि नियुक्ति की तारीख से 2 वर्ष होगी जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा लिखित में दिए गए कारणों से 3 वर्ष तक विस्तारित किया जा सकेगा ।

(2) परिवीक्षाधीन व्यक्ति के सिवाय किसी व्यक्ति को जब प्रथमत: किसी पद पर नियुक्त किया जाएगा तो वह ऐसी नियुक्ति की तारीख से 2 वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रहेगा जिसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिए गए लिखित कारणों से 3 वर्ष तक विस्तारित किया जा सकेगा ।"

11. परिवीक्षाधीन व्यक्ति का पुष्टिकरण –

जब किसी कर्मचारी को किसी पद पर परिवीक्षा पर या परीक्षण पर नियुक्त किया जाता है और उसने नियुक्ति प्राधिकारी के समाधान में अपनी परिवीक्षा/परीक्षण पूरा कर लिया हो तो वह यथास्थिति अधिष्ठायी नियुक्ति के लिए या उस पर बने रहने के लिए पात्र

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"10. **Probation** –

(1) Every direct recruit shall initially be appointed on probation, the period of probation being two years from the date of appointment, which may be extended to three years by the competent authority for reasons to be recorded in writing.

(2) Every person other than a probationed shall when first appointed to any post, be on probation for a period of two years from the date of such appointment, which may be extended to three years by the competent authority for reasons to be recorded in writing.

11. **Confirmation of Probationers**

When an employee appointed to a post on probation or on trial has completed his/her probation/trial to the satisfaction of the appointing authority, he/she shall be eligible for substantive appointment or continuance therein, as

होगा/होगी और ऐसी परिवीक्षा नियुक्ति ज्येष्ठता के क्रम में की जाएगी जैसा कि सुसंगत चयनित सूची में उपदर्शित हो ।"

11. नियमों के संयुक्त परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि आरंभत: किसी सीधी भर्ती व्यक्ति को 2 वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर नियुक्त किया जाएगा जिसे लिखित में दिए गए कारणों से 3 वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा । ऐसा केवल परिवीक्षा पर सफलतापूर्वक अवधि पूरी करने पर होगा कि कोई कर्मचारी पुष्टिकरण के लिए हकदार बन जाएगा जैसा कि नियम 11 में उल्लिखित है । तथापि, यदि कोई कर्मचारी जिसे केन्द्रीय विद्यालय संगठन में नियुक्त किया गया है, अपनी परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी करने में असफल रहा है तब उसे एक मास की सूचना पर अथवा उसके बदले में वेतन का संदाय करने पर किसी भी समय निर्मोचित किया जा सकेगा । नियम 12, जहां तक यह वर्तमान संविवाद से सुसंगत है, इस प्रकार है :–

""**परिवीक्षाधीन व्यक्ति का निर्मोचन या प्रत्यावर्तन** –

(i) केन्द्रीय विद्यालय संगठन में किसी पद पर नियुक्त कोई कर्मचारी जो अनुसूची में विनिर्दिष्ट है और जिसे केन्द्र सरकार या राज्य सरकार किसी केन्द्रीय विद्यालय संगठन के अधीन किसी पद पर धारणाधिकार प्राप्त नहीं है, एक मास की सूचना या इसके बदले में वेतन का संदाय करने पर किसी पद से निर्मोचित करने का दायी होगा, यदि ;

---

the case may be, and such substantive appointment shall be made in the order of seniority as indicated in the relevant select panel."

""**Discharge or Reversion of Probationers** –

(i) An employee appointed to any post in the Kendriya Vidyalaya Sangathan, specified in the Schedule, who has no lien on any post under the Central Government or any State Government or the Kendriya Vidyalaya Sangathan shall, while on probation, be liable to be discharged from the post at any time with one months notice or pay in lieu thereof, if ;

(ii) परिवीक्षा के दौरान उसकी कार्यक्षमता या आचरण के आधार पर उसे संबंधित पद पर आगे बने रहने के लिए अयोग्य समझा जाता है ; या

(iii) यदि उसकी राष्ट्रीयता, आयु, स्वास्थ्य या पूर्ववृत्त से संबंधित कोई सूचना प्राप्त होने पर नियुक्त प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि वह अपात्र है या अन्यथा केन्द्रीय विद्यालय संगठन का कर्मचारी बना रहने के लिए अनुपयुक्त है ।"

12. परिवीक्षा के संबंध में विधि पूर्णतया सुस्थापित है । कलंक लगने की संकल्पना स्वत: निर्मोचन के आदेश से प्रकट होनी चाहिए और आदेश में स्पष्टत: ऐसे शब्दों का उल्लेख होना चाहिए जो कलंक लगाने वाले हों और संविधान के अनुच्छेद 311 के उपबंधों को आकर्षित करते हों । कार्य में सुधार करने की अपेक्षा या सक्षमता की कमी से संबंधित किए गए टिप्पण किसी कर्मचारी के कार्य के संबंध में पाए गए हों और उसके कार्य के निर्धारण के संदर्भ में हों, जो ऐसे दुराचार के अभिकथनों के बराबर नहीं हों, जो ऐसे किसी कर्मचारी पर कोई कलंक डालते हों । इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **शैलजा शिवाजीराप पाटिल** बनाम **प्रेसीडेन्ट माननीय खसदार यूजीएस संस्था और अन्य**[1], **कमाडेंट 11वीं बटालियन, ए. पी. विशेष पुलिस (आईआर), कुडप्पा, कुडप्पा जिला** बनाम **शंकर नायक**[2] और **भारत संघ और अन्य** बनाम **ए. पी. बाजपेयी और अन्य**[3] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया जा सकता है । माननीय उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा

(ii) On the basis of his/her performance or conduct during the probation he/she is considered unfit for further retention in the post concerned; or

(iii) On the receipt of any information relating to his/her nationality, age, health or antecedents, the appointing authority has satisfied that he/she is ineligible or otherwise unfit for being an employee of the Kendriya Vidyalaya Sangathan."

[1] (2002) 10 एस. सी. सी. 394.

[2] (2003) 5 एस. सी. सी. 580.

[3] (2003) 2 एस. सी. सी. 433.

शमशेर सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए सुविख्यात निर्णय में ऐसे आशय और आधार के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है जिसमें कोई हानिकर आदेश पारित किया गया हो । इस विषय पर **राधेश्याम गुप्ता** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य एग्रो इंडस्ट्रीज कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य**[2] वाले मामले में पुन: इस विधि पर चर्चा की गई थी । संक्षिप्तत: माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत यह है कि यदि निर्मोचन के किसी स्पष्ट आदेश से किसी कर्मचारी की भावी संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो तब ऐसा आदेश शास्तिक प्रकृति का आदेश समझा जाएगा ।

13. यदि हम तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 के स्पष्ट आदेश की परीक्षा करें तो इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिससे मूल आवेदक-रिट याची पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना उपदर्शित होता हो । निर्मोचन के आदेश से केवल यह उपदर्शित होता है कि परिवीक्षा अवधि के दौरान उसकी सेवाएं नियुक्ति पत्र के पैरा 3(ii) को दृष्टिगत करते हुए समाप्त की गई थीं । तारीख 17 फरवरी, 1998, 7 अप्रैल, 1998 और 6 अक्तूबर, 1998 (उपाबंध एफ, जी और एच) के पूर्वतर पत्रों में भी ऐसा कुछ नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाए कि आदेश से ऐसा कोई कलंक स्पष्ट होता है जिसके आधार पर यह राय बनाई जा सके कि आदेश शास्तिक प्रकृति का है और इसलिए जांच की जानी चाहिए थी । इसके अतिरिक्त मूल आवेदक-रिट याची ने उक्त पद धारित करने के लिए अभी तक कोई अधिकार अर्जित नहीं किया है और किसी भी प्रकार से उसे केन्द्रीय विद्यालय संगठन के प्रधानाचार्य के पद पर वापस भेजा गया था जिसके बारे में यह उपधारित किया जा सकता है कि उसने इस पर धारणाधिकार प्राप्त किया है । यदि इन पत्रों का उसकी सेवा वृत्ति पर कोई प्रभाव होता तो उसे प्रधानाचार्य के रूप में पदभार ग्रहण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाता । तारीख 17 फरवरी, 1998, 7 अप्रैल, 1998 और 6 अक्तूबर, 1998 के पत्रों (उपाबंध एफ, जी और एच) का उसकी सेवा वृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **अजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[3], **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **कौशल किशोर शुक्ला**[4]

---

[1] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 2192.

[2] (1999) 2 एस. सी. सी. 21.

[3] (1983) 2 एस. सी. सी. 217.

[4] (1991) 1 एस. सी. सी. 691.

और **पंजाब राज्य** बनाम **सुखविन्दर सिंह**[1] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया जा सकता है ।

14. हमें यह प्रतीत होता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय जिनका कि अवलंब लिया गया है, मूल आवेदक-रिट याची के मामले का समर्थन नहीं करते । उदाहरण के लिए **डी. पी. बनर्जी** बनाम **एस. एन. बोस नेशनल सेंटर फार बेसिक साइंसिज़**[2] वाले मामले में सेवा समाप्ति के पत्रों में फर्जी बिल तैयार करने, शैक्षणीय स्टाफ महिला सदस्यों से दुर्व्यवहार करने जिन्होंने कि लिखित शिकायत भेजी थी, कार्यालय परिसर से लगातार अनुपस्थित रहने जिसके संबंध में संकाय सदस्यों द्वारा शिकायत भेजी गई थी, संबंधी विनिर्दिष्ट अभिकथन किए गए थे और ये ऐसे कतिपय दृष्टांत थे जिन्हें निर्णय के पैरा 5 में उपदर्शित किया गया था । ऐसी ही प्रकृति के कुछ अन्य अभिकथन किए गए हैं जिनके बारे में निर्णय के पैरा 6 में कर्मचारियों के पत्रों का उल्लेख किया गया है । अत: सेवा समाप्ति के आदेश का आधार एक स्पष्टता लाकर दुराचार के अभिकथन को उपदर्शित करता है । इसी प्रकार **वी. पी. आहूजा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में निर्मोचन आदेश में प्रयुक्त शब्द ये थे कि कर्मचारी अपने 'प्रशासनिक और तकनीकी कर्तव्यों' के अनुपालन में विफल रहा था । हमारे समक्ष के मामले में न तो तारीख 5/6 अप्रैल, 1999 के निर्मोचन आदेश में और न ही तारीख 17 फरवरी, 1998, 7 अप्रैल, 1998 और 6 अक्तूबर, 1998 (उपाबंध एफ, जी और एच) पत्रों में ऐसे किन्हीं शब्दों का उल्लेख है । तद्नुसार हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते हैं कि **वी. पी. आहूजा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[3] और **डी. पी. बनर्जी** बनाम **एस. एन. बोस नेशनल सेंटर फार बेसिक साइंसिज़** (उपरोक्त) वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू होते हैं ।

15. 2003 की एस. डब्ल्यू. पी. सं. 2034 में प्रत्यर्थी-याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मूल आवेदक-रिट याची डा. आर. डी. विश्वकर्मा का कोई वेतन संदेय नहीं है जो कि केन्द्रीय विद्यालय संगठन के

---

[1] (2005) 5 एस. सी. सी. 569.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 60.

[3] (2000) 3 एस. सी. सी. 239.

सहायक आयुक्त के पद से संबंधित है । उपर्युक्त दलील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश का अनुपालन किया जाना आवश्यक था । हमारा यह मत है कि अधिकरण ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्यर्थी-विभाग ने डा. आर. डी. विश्वकर्मा के वेतन को रोकने में विधि के आयामों के अनुसार कार्य नहीं किया है जिसे कि वे पहले ही दे चुके हैं और इसलिए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि अधिकरण को अधिकारिता थी और मामला अधिकरण को स्थानांतरित किया जाना चाहिए था, उच्च न्यायालय का अंतरिम आदेश अधिकारिता रहित था क्योंकि अंतरिम आदेश सतत रूप से प्रवर्तन में था, दलील ठीक ही खारिज की गई है । अत: प्रत्यर्थी-विभाग की अधिकारिता प्रवर्तन के आधार पर मूल आवेदक-रिट याची को वेतन से इनकार करने की कार्यवाही पूर्णतया अन्यायपूर्ण थी और उच्च न्यायालय के आदेश के अतिक्रमण के बराबर थी ।

16. हमें अधिकरण द्वारा मूल आवेदक-रिट याची के वेतन के संदाय के संबंध में अभिव्यक्त मत में कोई विधिक अनियमितता प्रतीत नहीं होती है ।

17. उपर्युक्त विवेचना के परिणामस्वरूप दोनों याचिकाएं खारिज की जाती हैं । इस मामले के द्वारा तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

याचिकाएं खारिज की गईं ।

मह.

संदीप कुमार और अन्य

बनाम

मदन कुमार दुबे और अन्य

तारीख 15 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति मुजफ्फ़र हुसैन अत्तार

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 – अपील न्यायालय द्वारा अस्थायी व्यादेश – मंजूर या नामंजूर करने के लिए अपेक्षाएं – अपील न्यायालय द्वारा कब्जे के बारे में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना यथास्थिति बनाए रखने का आदेश पारित नहीं किया जा सकता – ऐसा आदेश पारित करते समय न्यायालय को सुविधा के संतुलन और अपूरणीय क्षति पर भी विचार करना चाहिए ।

अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए सिविल मूल वाद फाइल किया था । इस वाद में विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को वाद-संपत्ति पर अपीलार्थियों के कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए अस्थायी व्यादेश जारी किया । प्रत्यर्थियों ने भी याचियों के विरुद्ध मूल सिविल वाद संस्थित किया था । निचले न्यायालयों के आदेशों से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने वर्तमान अपील फाइल की । अपील भागत: मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपील न्यायालय द्वारा कब्जे के बारे में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित बिना यथास्थिति बनाए रखने का आदेश पारित नहीं किया जा सकता । अपील न्यायालय के आदेश में स्थल पर इस कारण से विधि और व्यवस्था की समस्या का उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि दोनों पक्षकार एक दूसरे के विरुद्ध वाद-संपत्ति पर अपने कब्जे का दावा कर रहे हैं । ऐसी स्थिति में यथास्थिति का आदेश मामले को सुलझाने के बजाय और अधिक कठिनाई उत्पन्न करेगा । न्यायालय प्रथमदृष्ट्या मामले, सुविधा का संतुलन और अपूरणीय क्षति के बारे में निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् ही अस्थायी व्यादेश मंजूर कर सकते हैं या इनकार कर सकते हैं । आक्षेपित आदेश में अस्थायी व्यादेश मंजूर करने या इनकार करने के लिए विधि के इन महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख नहीं है । (पैरा 4 और 5)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 36.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वी. आर. वजीर

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. एल. कलगोतरा

न्यायमूर्ति मुजफ्फ़र हुसैन अत्तार – अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए सिविल मूल वाद फाइल किया था । इस वाद में विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को वाद-संपत्ति पर अपीलार्थियों के कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए अस्थायी व्यादेश जारी किया । प्रत्यर्थियों ने भी याचियों के विरुद्ध मूल सिविल वाद संस्थित किया था ।

2. प्रत्यर्थियों ने प्रथम अपर मुंसिफ़ मजिस्ट्रेट जम्मू द्वारा पारित आदेश को अपील फाइल करके आक्षेपित किया था । यह अपील प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, जम्मू ने तारीख 4 सितंबर, 2012 के आदेश द्वारा विनिश्चित कर दी जिसके अधीन विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया था और पक्षकारों को वाद-संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे के संबंध में स्थल पर यथास्थिति बनाए रखने का निदेश दिया गया था । अपील न्यायालय ने दोनों वादों का उप-न्यायाधीश, जम्मू के न्यायालय द्वारा विचारण करने का भी निदेश दिया ।

3. विद्वान् विचारण न्यायालय ने कब्जे के संबंध में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित किया और इसके पश्चात् प्रत्यर्थियों को वाद लंबन और निपटान तक याचियों के कब्जे में हस्तक्षेप न करने के लिए व्यादेश जारी किया । अपील न्यायालय ने इस आदेश को अपास्त कर दिया किन्तु इसके साथ-साथ वाद-संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का भी निदेश दिया ।

4. अपील न्यायालय द्वारा कब्जे के बारे में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित किए बिना यथास्थिति बनाए रखने का आदेश पारित नहीं किया जा सकता । अपील न्यायालय के आदेश में स्थल पर इस कारण से विधि और व्यवस्था की समस्या का उल्लेख करना आवश्यक है क्योंकि दोनों पक्षकार एक दूसरे के विरुद्ध वाद-संपत्ति पर अपने कब्जे का दावा कर

रहे हैं । ऐसी स्थिति में यथास्थिति का आदेश मामले को सुलझाने के बजाय और अधिक कठिनाई उत्पन्न करेगा ।

5. न्यायालय प्रथमदृष्ट्या मामले, सुविधा का संतुलन और अपूरणीय क्षति के बारे में निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् ही अस्थायी व्यादेश मंजूर कर सकते हैं या इनकार कर सकते हैं । आक्षेपित आदेश में अस्थायी व्यादेश मंजूर करने या इनकार करने के लिए विधि के इन महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लेख नहीं है ।

6. इसके पश्चात् पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इस न्यायालय के मत को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाए और अपील न्यायालय को इस आदेश में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए मामले में पुन: सुनवाई करने और विधि के अनुसार आदेश पारित करने का निदेश दिया जाए ।

7. उपर्युक्त कारणों से अपील न्यायालय द्वारा पारित आदेश उस सीमा तक अपास्त किया जाता है जहां तक यह वाद-संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने के निदेश से संबंधित है । अपील न्यायालय कब्जे के संबंध में प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष अभिलिखित करेगा और उसके पश्चात् यथास्थिति बनाए रखने का निदेश देगा । अपील न्यायालय कोई समुचित आदेश जिसे वह मामले की परिस्थितियों में न्यायोचित और उचित समझे, पारित करने के लिए मामले की पुन: सुनवाई करने के लिए स्वतंत्र है ।

8. अपील का उपरोक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है ।

9. अभिलेख वापस भेजा जाए । पक्षकार तारीख 25 मार्च, 2013 को अपील न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों ।

अपील भागत: मंजूर की गई ।

मह.

प्रीत पाल सिंह

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 1 अप्रैल, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार और न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 – धारा 103 – कर्मचारी की साधारण लिपिक के रूप में नियुक्ति – ज्येष्ठ लिपिक के पद पर प्रोन्नति – अन्य विभाग में रिक्ति के विज्ञापन के जवाब में आवेदन – सीधी भर्ती प्रक्रिया द्वारा जांच और आरक्षण लिपिक के रूप में नियुक्ति – ज्येष्ठता के लिए पिछली सेवा का फायदा देने के लिए समावेदन – इनकार – रिट याचिका – चूंकि कर्मचारी की वाणिज्यिक विभाग में नियुक्ति सीधी भर्ती द्वारा की गई थी इसलिए कर्मचारी पिछली सेवा के आधार पर ज्येष्ठता का दावा नहीं कर सकता ।

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, चंडीगढ़ न्यायपीठ (जम्मू-क्षेत्र) द्वारा तारीख 2 फरवरी, 2010 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा याची द्वारा फाइल किया गया मूल आवेदन खारिज किया गया है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची को आरंभत: तारीख 23 दिसंबर, 1987 को क्षेत्रीय रेल प्रबंधक/प्रत्यर्थी संख्या 2 के कार्यालय में कार्मिक विभाग में 3050-4590 के वेतनमान में लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था । इसके पश्चात् उसे 28 अक्तूबर, 1993 से 4500-7000 के वेतनमान में ज्येष्ठ लिपिक के रूप में प्रोन्नत किया गया था । उसने आरक्षण लिपिक के पद के लिए विज्ञापन में समावेदन किया था जो वाणिज्यिक विभाग में उपलब्ध था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए उसकी नियुक्ति आरक्षण लिपिक के रूप में सीधी भर्ती द्वारा की गई थी । याची ने अधिकरण के समक्ष तारीख 10 सितंबर, 1991 के परिपत्र के खण्ड-5 का अवलंब लिया जो अराजपत्रित कर्मचारी की ज्येष्ठता के विषय में रेल मंत्रालय द्वारा जारी

किया गया था । उपर्युक्त खण्ड में यह उपबंध है कि जहां कर्मचारी को प्रशासनिक हित को ध्यान में रखते हुए एक काडर से दूसरे काडर में स्थानांतरित किया जाता है वहां उसकी ज्येष्ठता प्रास्थिति संरक्षित रहेगी । अधिकरण ने यह मत व्यक्त किया कि खण्ड-5 का लिया गया अवलंब पूर्णतया गलत है और भ्रम उत्पन्न करने वाला है क्योंकि याची को प्रशासनिक हित को या वृहत्त लोक हित को ध्यान में रखते हुए एक ज्येष्ठता इकाई से दूसरी इकाई में स्थानांतरित नहीं किया गया था । तथ्यत: उसने काडर के परिवर्तन के लिए विकल्प का प्रयोग करते हुए वाणिज्यिक विभाग में सामान्य विभागीय प्रतियोगिता कोटा के लिए आवेदन किया था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए रेल भर्ती बोर्ड द्वारा उसके नाम पर सीधी भर्ती नियुक्ति के रूप में विचार किया गया था । अत: ज्येष्ठ लिपिक के रूप में सेवा का कोई फायदा याची को आरक्षण लिपिक काडर में नहीं दिया जा सकता । दूसरी दलील यह दी गई है कि चूंकि उसका वेतन संरक्षित था इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसकी ज्येष्ठता भी संरक्षित होगी । अभिव्यक्त मत निरपवादपूर्ण है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । याची ने जो रेल के कार्मिक विभाग में ज्येष्ठ लिपिक के पद पर कार्य कर रहा था, सामान्य विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा कोटा के अधीन एक पद के लिए आवेदन किया था, जो काडर के परिवर्तन के विकल्प के साथ वाणिज्यिक विभाग में उपलब्ध था । वह सफल हुआ था और उसे आरक्षण लिपिक के लिए नियुक्त किया गया था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए यह एक सीधी भर्ती थी । अत: वह यह दलील नहीं दे सकता कि उसके द्वारा ज्येष्ठ लिपिक के रूप में की गई पूर्वतर सेवा को आरक्षण लिपिक के काडर में ज्येष्ठता प्रदान करने के लिए संगणित किया जाना चाहिए । यह स्थानांतरण द्वारा नियुक्ति नहीं थी । यह याची द्वारा किया गया एक स्वैच्छिक कार्य था और इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा इस आधार पर प्रशासनिक या लोक हित में काडर के स्थानांतरण का फायदा नहीं दिया जा सकता जिससे कि उसका मामला 10 सितंबर, 1991 के मूल परिपत्र के खण्ड-5(12) के अर्थान्तर्गत आता हो । ग्रहण किए जाने के लिए रिट याचिका में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 2 और 3)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की रिट याचिका सं. 436.

जम्मू-कश्मीर संविधान, 1957 की धारा 103 के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्रीमती सुरिन्दर कौर और श्री राजीव गोरखा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. एस. चंदेल

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार ने दिया ।

मु. न्या. कुमार – जम्मू-कश्मीर संविधान की धारा 103 के साथ पठित भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, चंडीगढ़ न्यायपीठ (जम्मू-क्षेत्र) द्वारा तारीख 2 फरवरी, 2010 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा याची द्वारा फाइल किया गया मूल आवेदन खारिज किया गया है । याची ने ज्येष्ठ लिपिक का फायदा देने के लिए दावा किया है जो उसे जांच सहयुक्त आरक्षण लिपिक (जिसे आगे संक्षेप में 'आरक्षण लिपिक' कहा गया है) के पद पर प्राप्त हुआ है । उपर्युक्त दावा इस आधार पर खारिज किया गया है कि याची आरक्षण लिपिक के पद पर नियुक्ति के लिए सीधी भर्ती द्वारा चयनित हुआ था ।

2. याची को आरंभत: तारीख 23 दिसंबर, 1987 को क्षेत्रीय रेल प्रबंधक/प्रत्यर्थी संख्या 2 के कार्यालय में कार्मिक विभाग में 3050-4590 के वेतनमान में लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था । इसके पश्चात् उसे 28 अक्तूबर, 1993 से 4500-7000 के वेतनमान में ज्येष्ठ लिपिक के रूप में प्रोन्नत किया गया था । उसने आरक्षण लिपिक के पद के लिए विज्ञापन में समावेदन किया था जो वाणिज्यिक विभाग में उपलब्ध था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए उसकी नियुक्ति आरक्षण लिपिक के रूप में सीधी भर्ती द्वारा की गई थी । याची ने अधिकरण के समक्ष तारीख 10 सितंबर, 1991 के परिपत्र के खण्ड-5 का अवलंब लिया जो अराजपत्रित कर्मचारी की ज्येष्ठता के विषय में रेल मंत्रालय द्वारा जारी किया गया था । उपर्युक्त खण्ड में यह उपबंध है कि जहां कर्मचारी को प्रशासनिक हित को ध्यान में रखते हुए एक काडर से दूसरे काडर में स्थानांतरित किया जाता है वहां उसकी ज्येष्ठता प्रास्थिति संरक्षित रहेगी । अधिकरण ने यह मत व्यक्त किया कि खण्ड-5 का लिया गया अवलंब पूर्णतया गलत है और भ्रम उत्पन्न करने वाला है क्योंकि याची को प्रशासनिक हित को या वृहत्त लोक हित को ध्यान में रखते हुए एक ज्येष्ठता इकाई से दूसरी इकाई में स्थानांतरित नहीं किया गया था । तथ्यत: उसने काडर के परिवर्तन के लिए विकल्प का प्रयोग करते हुए

वाणिज्यिक विभाग में सामान्य विभागीय प्रतियोगिता कोटा के लिए आवेदन किया था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए रेल भर्ती बोर्ड द्वारा उसके नाम पर सीधी भर्ती नियुक्ति के रूप में विचार किया गया था । अत: ज्येष्ठ लिपिक के रूप में सेवा का कोई फायदा याची को आरक्षण लिपिक काडर में नहीं दिया जा सकता । दूसरी दलील यह दी गई है कि चूंकि उसका वेतन संरक्षित था इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उसकी ज्येष्ठता भी संरक्षित होगी ।

3. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना और हमारा यह मत है कि अभिव्यक्त मत निरपवादपूर्ण है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । याची ने जो रेल के कार्मिक विभाग में ज्येष्ठ लिपिक के पद पर कार्य कर रहा था, सामान्य विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा कोटा के अधीन एक पद के लिए आवेदन किया था, जो काडर के परिवर्तन के विकल्प के साथ वाणिज्यिक विभाग में उपलब्ध था । वह सफल हुआ था और उसे आरक्षण लिपिक के लिए नियुक्त किया गया था । सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए यह एक सीधी भर्ती थी । अत: वह यह दलील नहीं दे सकता कि उसके द्वारा ज्येष्ठ लिपिक के रूप में की गई पूर्वतर सेवा को आरक्षण लिपिक के काडर में ज्येष्ठता प्रदान करने के लिए संगणित किया जाना चाहिए । यह स्थानांतरण द्वारा नियुक्ति नहीं थी । यह याची द्वारा किया गया एक स्वैच्छिक कार्य था और इसलिए प्रत्यर्थी द्वारा इस आधार पर प्रशासनिक या लोक हित में काडर के स्थानांतरण का फायदा नहीं दिया जा सकता जिससे कि उसका मामला 10 सितंबर, 1991 के मूल परिपत्र के खण्ड-5(12) के अर्थान्तर्गत आता हो । ग्रहण किए जाने के लिए रिट याचिका में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है ।

4. उपर्युक्त कारणों से यह याचिका विफल होती है और इसलिए यह खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

राजिन्दर शर्मा

बनाम

न्यू इंडिया एश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य

तारीख़ 15 अप्रैल, 2013

मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार और न्यायमूर्ति धीरज सिंह ठाकुर

जम्मू-कश्मीर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1987 (1987 का 16) – धारा 11 – दुकान और उससे जुड़ी वस्तुओं का बीमा – निकट के आवासीय भवन में आग लगने से हुए नुकसान के लिए दावा – बीमा कवर से आवासीय भवन का बीमा कराना साबित न होना – बीमाकर्ता आवासीय मकान में हुए नुकसान के लिए दायी नहीं है – बीमाकृत को कोई प्रतिकर नहीं दिलाया जा सकता ।

जम्मू-कश्मीर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1987 की धारा 17 के अधीन वर्तमान अपील जम्मू और कश्मीर उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2013 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-परिवादी के अनुरोध को खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – बीमा कवर (बीमा रक्षण) के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि आग और जोखिम प्रमाणपत्र के अधीन लकड़ी के सामान, उपस्कर, फिटिंग और व्यापार के भंडार का बीमा किया गया है । पालिसी का खंड 2 यह स्पष्ट करता है कि उपर्युक्त पते पर अर्थात् मैसर्स प्रेम दी हट्टी (एसबीआई-कुद) अर्थात् अभिकथित दुकान परिसर में रखी गई सभी वस्तुएं ही बीमा पालिसी के अन्तर्गत आती हैं । उस आवासीय परिसर के बारे में कोई उल्लेख नहीं है जहां स्वीकृतत: आग लगी है । आवासीय परिसर पृथक् है और दुकान परिसर से भिन्न है । पुलिस रिपोर्ट के परिशीलन से अग्नि और आपात विभाग की रिपोर्ट (उपाबंध बी और सी) के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि आग कुद में लगी थी जिसमें चार मंजिला आवासीय भवन और भंडार/कार्यशाला स्थित है जो श्री राजेन्द्र शर्मा की है । नुकसान परिसर को तथा आग, तपिश और धुंए के कारण वस्तुओं को भी पहुंचा था । पुलिस रिपोर्ट में ऐसे ही निष्कर्ष अभिलिखित

किए गए हैं । शर्मा पर्यवेक्षक द्वारा प्रस्तुत तारीख 26 मार्च, 2007 की रिपोर्ट (उपाबंध एफ) में भी किसी संदेह के बिना यह बात उल्लिखित की गई है कि आग निकट के बहुमंजिलीय भवन में लगी थी जो बीमा पालिसी के अन्तर्गत नहीं आता है । अभिलेख पर के साक्ष्य, पर्यवेक्षक की रिपोर्ट और बीमा कवर (बीमा रक्षण) के आधार पर हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आग की घटना ऐसे आवासीय क्षेत्र में घटित हुई है जो बीमा कवर का भाग नहीं है । आयोग द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अपवाद रहित हैं और तद्नुसार उनकी पुष्टि की जाती है । (पैरा 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल सीआईएमए अपील सं. 85.

जम्मू-कश्मीर विवाद प्रतितोष आयोग, जम्मू द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2013 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अमित गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जुगल किशोर गुप्ता

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एम. एम. कुमार ने दिया ।

मु. न्या. कुमार – जम्मू-कश्मीर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1987 की धारा 17 के अधीन वर्तमान अपील जम्मू और कश्मीर उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (जिसे आगे संक्षेप में 'आयोग' कहा गया है) द्वारा तारीख 14 जनवरी, 2013 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी-परिवादी के अनुरोध को खारिज किया गया है । अपीलार्थी-परिवादी ने आग लगने की घटना के आधार पर जो अभिकथित रूप से तारीख 22 मार्च, 2007 को घटी थी, बीमा कवर (बीमा रक्षण) के आधार पर 8 लाख रुपए के नुकसान का दावा किया था ।

2. यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि अन्य वस्तुओं के साथ दुकान परिसर तारीख 27 सितंबर, 2006 से तारीख 26 सितंबर, 2007 की मध्यरात्रि की अवधि के लिए बीमा कवर के अधीन बीमाकृत किया गया था । अपीलार्थी-परिवादी ने यह दावा किया कि परिसर बीमा कवर के अन्तर्गत आता है किंतु बीमा कंपनी ने इस आधार पर दावा खारिज कर दिया कि आग लगने की घटना वस्तुत: अपीलार्थी-परिवादी के आवासीय भवन में हुई थी जहां उसने व्यापार से संबंधित कतिपय चीजों का भंडारण किया था न कि आग लगने की घटना दुकान परिसर में हुई थी जो बीमा

संविदा के अन्तर्गत आता था । आयोग का मत आक्षेपित आदेश के पैरा 2 के परिशीलन से प्रकट होता है जो इस प्रकार है :–

> "हमने विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले पर विचार किया । उपर्युक्त बीमा पालिसी परिवादी के दुकान के नाम से ली गई थी और इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि वहां माल रखा गया था । वास्तविक संविवाद घटना के वास्तविक स्थल के बारे में है जहां आग लगने की घटना हुई थी और जिसके बारे में परिवादी ने यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि यह स्थान पालिसी के अधीन बीमाकृत स्थान का एक भाग है और प्रत्यर्थी के अनुसार वह परिवादी का आवासीय मकान था जहां निस्संदेह उसने कुछ माल का भंडारण किया था किंतु तथ्यत: यह बीमाकृत परिसर का भाग नहीं था और पालिसी के निबंधनों में स्पष्टत: दुकान परिसर का बीमा किया गया था और वहीं माल रखा जाना था । बीमाकृत जोखिम के ब्यौरे के परिशीलन से जो बीमाकृत ने 'प्रेम दी हट्टी निवासी कुद' उल्लिखित किया था, यह प्रकट होता है कि लकड़ी के सामान और उससे जुड़ी चीजों का 50,000/- रुपए की मालियत पर बीमा किया गया था जबकि शेष कवर 4.50 लाख रुपए का था जिसमें मीठे का भंडारण और कच्ची सामग्री तथा साथ में पटल, फ्रिजर और अन्य संबंधित वस्तुएं थीं जिनसे स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि बीमाकृत परिसर केवल मिठाई की दुकान थी और उसमें परिवादी का आवासीय भवन सम्मिलित नहीं था । बीमाकृत वस्तुओं में विक्रय पटल और फ्रिज का सम्मिलित करना स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करता है कि बीमाकृत परिसर में मिठाई की दुकान सम्मिलित थी और लकड़ी का सामान और उससे जुड़ी हुई वस्तुएं थीं जो कि 50,000/- रुपए तक की थीं, इसलिए आवासीय भवन बीमाकृत संपत्ति का भाग होने का अभिवाक् सही नहीं है क्योंकि उस स्थिति में इस मद पर कवर न केवल अधिक हो जाएगा अपितु यह मुख्य आवासीय मकान के बीमाकृत भाग के रूप में बन जाएगा । इसके अतिरिक्त इस बात का स्पष्ट सबूत नहीं है कि बीमा कवर में आवासीय मकान या उसमें रखी हुई कोई वस्तु सम्मिलित की गई थी ; न ही इस बात का कोई स्पष्टीकरण दिया गया है कि आवासीय भवन में रखा गया कोई माल दुकान के साथ बीमाकृत था क्योंकि मुख्य भवन बीमाकृत नहीं किया गया था जिसे साधारणतया बीमाकृत नहीं किया गया जाता है ।"

3. अपीलार्थी-परिवादी के विद्वान् काउंसेल श्री अमित गुप्ता ने हमारा

ध्यान बीमा पालिसी (पेपर बुक के पृष्ठ 29) की ओर दिलाते हुए यह दलील दी है कि पालिसी के खंड 2 का उदारतापूर्वक निर्वचन किया जाना चाहिए और आवासीय क्षेत्र को जहां आग लगने की घटना हुई है और माल का नुकसान हुआ है, बीमा संविदा के अन्तर्गत माना जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल के अनुसार आवासीय परिसर और दुकान परिसर एक दूसरे का भाग हैं और इसलिए बीमा कवर इस क्षेत्र का भी माना जाना चाहिए ।

4. तथापि, बीमा कंपनी के विद्वान् काउंसेल श्री जुगल किशोर गुप्ता ने यह दलील दी है कि दोनों ही परिसर एक दूसरे से पृथक् और भिन्न हैं और अबीमाकृत वस्तु बीमाकृत पालिसी के अन्तर्गत नहीं आती । विद्वान् काउंसेल के अनुसार आयोग ने अपीलार्थी-परिवादी के दावे को ठीक ही खारिज किया है और उसे किसी भी आधार पर उलटा नहीं जा सकता ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि आयोग द्वारा अभिव्यक्त मत में कोई अनियमितता नहीं है । यहां बीमाकृत कवर के सुसंगत भाग का परिशीलन करना आवश्यक है ।

(न्यायालय द्वारा तालिका विषय वस्तु का लोप किया गया) ।

6. बीमा कवर (बीमा रक्षण) के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि आग और जोखिम प्रमाणपत्र के अधीन लकड़ी के सामान, उपस्कर, फिटिंग और व्यापार के भंडार का बीमा किया गया है । पालिसी का खंड 2 यह स्पष्ट करता है कि उपर्युक्त पते पर अर्थात् मैसर्स प्रेम दी हट्टी (एसबीआई-कुद) अर्थात् अभिकथित दुकान परिसर में रखी गई सभी वस्तुएं ही बीमा पालिसी के अन्तर्गत आती हैं । उस आवासीय परिसर के बारे में कोई उल्लेख नहीं है जहां स्वीकृतत: आग लगी है । आवासीय परिसर पृथक् है और दुकान परिसर से भिन्न है । पुलिस रिपोर्ट के परिशीलन से अग्नि और आपात विभाग की रिपोर्ट (उपाबंध बी और सी) के परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि आग कुद में लगी थी जिसमें चार मंजिला आवासीय भवन और भंडार/कार्यशाला स्थित है जो श्री राजेन्द्र शर्मा की है । नुकसान परिसर को तथा आग, तपिश और धुंए के कारण वस्तुओं को भी पहुंचा था । पुलिस रिपोर्ट में ऐसे ही निष्कर्ष अभिलिखित किए गए हैं । शर्मा पर्यवेक्षक द्वारा प्रस्तुत तारीख 26 मार्च, 2007 की रिपोर्ट (उपाबंध एफ) में भी किसी संदेह के बिना यह बात उल्लिखित की गई है कि आग निकट के बहुमंजिलीय भवन में लगी थी जो बीमा पालिसी के अन्तर्गत नहीं आता है । पर्यवेक्षक की रिपोर्ट इस प्रकार है :–

"आपकी कुद स्थित संपत्ति का जो कि तारीख 22 मार्च, 2007

को लगभग 8.00 बजे अपराह्न आग लगने के कारण जल गई थी, हमारे द्वारा तारीख़ 24 मार्च, 2007 को निरीक्षण किया गया, और हम यह सूचित करना चाहते हैं कि उपर्युक्त बीमा पालिसी आपकी दुकान में रखे गए लकड़ी के सामान उससे जुड़ी दुकान में पड़ी वस्तुओं और उपस्कर के संबंध में ही जारी की गई है जो कि कुद में राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है और जो आग से प्रभावित नहीं हुई है । जबकि आपके निकट एक तीन मंजिलीय भवन जो सामग्री के भंडारण, मिठाई के निर्माण और आपके कर्मकारों के आवासीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है और जिसमें कच्ची सामग्री, मिठाई बनाने के उपस्कर और कर्मकारों की वैयक्तिक वस्तुओं सहित अन्य वस्तुओं को आग से नुकसान पहुंचा है, उक्त बीमा पालिसी के अन्तर्गत नहीं आती हैं । इस भवन में रखा गया मिठाई का भंडार, कच्ची सामग्री, लकड़ी का सामान और उससे जुड़ी वस्तुएं उक्त बीमा पालिसी के अन्तर्गत नहीं आतीं ।

यदि आपने अपनी उस संपत्ति से संबंधित कोई अन्य बीमा पालिसी कराई है जो तारीख 22 मार्च, 2007 को आग से जली है तो मामले में हमारे द्वारा कार्रवाई करने के लिए उसे हमारे पास भेजा जाए अन्यथा उपर्युक्त बीमा पालिसी के अधीन नुकसान पहुंची संपत्ति के संबंध में आपके दावे का निर्धारण नहीं किया जा सकता जिसे करने के बारे में हमें लिखित में कहा गया है ।"

7. अभिलेख पर के साक्ष्य, पर्यवेक्षक की रिपोर्ट और बीमा कवर (बीमा रक्षण) के आधार पर हमें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आग की घटना ऐसे आवासीय क्षेत्र में घटित हुई है जो बीमा कवर का भाग नहीं है । आयोग द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अपवाद रहित हैं और तद्नुसार उनकी पुष्टि की जाती है ।

8. उपर्युक्त चर्चा के अनुसरण में यह अपील विफल होती है और इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

कमला देवी (श्रीमती)

बनाम

मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स और अन्य

तारीख 24 जुलाई, 2012

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित राजस्थान परिसर (किराया एवं बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13] – द्वितीय अपील – मकान मालिक की सहमति के बिना किराएदारी मकान में तात्विक परिवर्तन करना – मकान मालिक को तात्विक परिवर्तन की मात्र जानकारी होना – बेदखली का वाद फाइल करना – यदि किसी किराएदार द्वारा किराएदारी मकान में मकान मालिक की सहमति के बिना तात्विक परिवर्तन किया जाता है यह कथन करते हुए कि इसकी जानकारी मकान मालिक को है तो सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर फाइल बेदखली के लिए वाद को डिक्री कर दिया जाएगा क्योंकि मात्र जानकारी होना सहमति की कोटि में नहीं आ सकेगा और मकान मालिक के वैध उत्तराधिकारी आबद्ध नहीं होंगे ।

वर्तमान मामले में, मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी द्वारा उस भू-खंड से किराएदार मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स की बेदखली की ईप्सा करते हुए तारीख 17 मई, 1974 को वर्तमान बेदखली के लिए वाद फाइल किया गया था, जिसे प्रतिवादी-फर्म के साझेदारों, श्री अजय गोयल और श्री शंकर लाल सोमानी द्वारा श्री रामेश्वर लाल भदादा-वर्तमान अपीलार्थी-वादी का पति के पक्ष में तारीख 12 नवम्बर, 1968 को निष्पादित किराया नोट प्रदर्श-4 के अधीन किराए पर दिया गया था । अन्य बातों के अलावा, उक्त किराया नोट के खंड 3 में यह कथित था कि नोहरा (विवादित भूमि) का खाली कब्जा वापस देते समय किराएदार खर्चे, यदि कोई हो, जो उक्त भू-खंड पर उसके द्वारा किया गया हो, के एवज में कोई दावा नहीं करेगा । मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी द्वारा यह दावा करते हुए बेदखली की ईप्सा की गई थी कि तारीख 31 मार्च, 1973 को वाद परिसर-भू-खंड, कुटुम्ब के आंशिक विभाजन के पश्चात् उसके हिस्से में आ गया था । अन्य बातों के अलावा, वाद किराया संदाय में व्यतिक्रम, वाद सम्पत्ति में तात्विक

परिवर्तन और मकान मालकिन की सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर फाइल किया गया था । उसने वाद-पत्र के पैरा 7 में यह भी दावा किया था कि उसने तारीख 17 अक्तूबर, 1973 के नोटिस द्वारा तारीख 15 अक्तूबर, 1973 से प्रतिवादी-किराएदार के पट्टे/किराएदारी को समाप्त कर दिया था । विद्वान् मुंसिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, भीलवाड़ा के विचारण न्यायालय ने तारीख 16 मई, 1980 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा वाद सं. 154/1974 को खारिज कर दिया और अन्य बातों के साथ विवाद्यक सं. 3 पर यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत भू-खंड पर निर्माण तत्कालीन मकान मालिक श्री रामेश्वर लाल भदादा जो वाद परिसरों से मात्र 700 मीटर की दूरी पर रह रहा था, की सहमति और उपमति से किया गया था और प्रदर्श-4 किराया नोट के खंड 3 से भी यह उपदर्शित होता है कि प्रश्नगत निर्माण मकान मालिक की सहमति से किया गया था । व्यतिक्रम का मुद्दा भी वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था, इसी प्रकार, तात्विक परिवर्तन और सद्भाविक आवश्यकता के मुद्दे भी वादी के विरुद्ध विनिश्चित किए गए थे । उक्त वाद खारिज किए जाने से व्यथित होकर वादी-मकान मालकिन ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा के प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील सं. 58/1981 - श्रीमती कमला बनाम बजरंग सां मिल्स और अन्य द्वारा अपील फाइल की जिसे भी तारीख 7 जनवरी, 1989 को खर्चों सहित खारिज कर दिया गया और विद्वान् अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के तात्विक परिवर्तन के बारे में विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि कर दी, तथापि, विवाद्यक सं. 1 मकान मालकिन और किराएदार के संबंध के बारे में निकाले गए निष्कर्षों को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि, प्रश्नगत सम्पत्ति तारीख 31 मार्च, 1973 के आंशिक विभाजन के पश्चात् मकान मालकिन श्रीमती कमला के हिस्से में आ गई थी, जिसकी नोटिस प्रतिवादी को दी गई थी, इसलिए, मकान मालकिन और किराएदार का सम्बन्ध अपीलार्थी-वादी के बराबर सिद्ध होता है । तथापि, विद्वान् अपील न्यायालय प्रतिवादी-किराएदार द्वारा किए गए तात्विक परिवर्तनों से सहमत नहीं हुआ । उक्त अपीली विनिश्चय से व्यथित होकर मकान मालकिन वादी-अपीलार्थी ने तारीख 5 अप्रैल, 1989 को इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन वर्तमान अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने स्पष्टतः और सही ही यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद परिसरों अर्थात् भूखंड (नोहरा) का

स्वामित्व तारीख 31 मार्च, 1973 से वादी-मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी पत्नी श्री रामेश्वर लाल भदादा के पास थी, इस न्यायालय की राय में, किराया नोट (प्रदर्श 4) के खंड 3 के अनुसार था । यह परिसर में निर्माण करने के लिए किसी अनुज्ञा की कोटि में नहीं आ सकता था । उक्त खंड 3 का मात्र अभिप्राय यह हो सकता है कि प्रतिवादी-किराएदार द्वारा किया गया खर्च, जिसे उसने निर्माण में किया है, जो किसी साम्या में नहीं दिया जा सकता था, उसके लिए प्रतिकर का दावा मकान मालिक से कर सकता है । उक्त किराया नोट पर मात्र प्रतिवादी फर्म के दोनों साझेदारों श्री अजय गोयल और श्री शंकर लाल सोमानी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । श्री रामेश्वर लाल भदादा ने कभी भी इस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे । निर्माण की तारीख या अवधि को न तो प्रतिवादी फर्म के साझेदारों के लिखित कथन में न ही उनके कथनों में उल्लेख किया गया है । प्रतिवादियों ने मात्र यह कथन किया है कि जो भी निर्माण किए गए हैं वे श्री रामेश्वर लाल भदादा-वर्तमान वादी-अपीलार्थी का पति की सहमति और सम्मति से किए गए हैं । जब एक बार वादी-मकान मालकिन ने न्यायालय के समक्ष यह पक्षकथन कर दिया कि वाद परिसरों अर्थात् प्रतिवादी-किराएदार द्वारा खाली भू-खंड (नोहरा) में तात्विक परिवर्तन किए गए हैं और ऐसे वादपत्र के प्रकथनों को पति द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में साबित किया गया है जिसमें वह अपनी प्रतिपरीक्षा में भी उपस्थित हुआ था तो यह दर्शित करने के लिए प्रतिवादी-किराएदारों पर सुस्पष्टतः सबूत का भार आ जाता है कि तात्विक परिवर्तन वादी-मकान मालकिन की सहमति और सम्मति से किया गया है । वर्तमान मकान मालकिन की ऐसी कोई सहमति या सम्मति का भी प्रकथन नहीं किया गया है, जिसे कम से कम प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किसी सबूत से सिद्ध करना चाहिए था । चूंकि बेदखली के मामलों में, स्वामित्व और हक के प्रश्न भी अतिसुसंगत नहीं होते हैं, यद्यपि पति की ग्राह्यता की उपधारणा की जा सकती थी तो भी उसका कोई परिणाम नहीं हो सकता है । चूंकि निर्माण के तथ्य को प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन के पैरा 5 में स्वयं स्वीकार किया गया है, वादी द्वारा साबित करने का प्रश्न प्रथमतः नहीं उठाया गया था और इसके अतिरिक्त वादी-अपीलार्थी का पति श्री रामेश्वर लाल भदादा ने न्यायालय के समक्ष अपने कथन में स्पष्टतः कथन किया है कि निर्माण प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किया गया था जिसके लिए उसने कभी भी सहमति नहीं दी थी । प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किए निर्माण की मात्र जानकारी से वर्तमान वादी-मकान मालकिन आबद्ध नहीं हो सकती है । विद्वान् निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकालने में प्रकटतः

त्रुटि कारित की है कि प्रतिवादी-किराएदारों ने वादी के पति की सहमति से निर्माण किया है जिससे कि उसकी पत्नी-वादी मकान मालकिन भी आबद्ध है । यह एक गंभीर त्रुटि है, जो आमुख पर ही दिखाई देती है । किराया नोट का खंड 3 की भी कोई बात प्रतिवादी-किराएदार के पक्ष में नहीं जाती है । मकान मालकिन ने समुचित नोटिस द्वारा किराएदारी समाप्त कर दी थी और तात्विक परिवर्तन के तथ्य को साबित कर दिया गया है, इसलिए, वादी-मकान मालकिन बेदखली की डिक्री पाने की हकदार थी जिसे निचले न्यायालयों द्वारा अन्यायोचित तरीके से इनकार कर दिया गया था । (पैरा 12)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1989 की एकल न्यायपीठ सिविल द्वितीय अपील सं. 90.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी-वादी की ओर से श्री रमित मेहरा

प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों की ओर से श्री विनय जैन

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – वर्तमान द्वितीय अपील मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी पत्नी श्री रामेश्वर लाल भदादा द्वारा प्रतिवादी-किराएदार मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स एक साझेदारी फर्म की बेदखली की ईप्सा करते हुए, निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर फाइल की गई है ।

वर्तमान द्वितीय अपील के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं –

2. मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी द्वारा उस भू-खंड से किराएदार मैसर्स बजरंग सॉ मिल्स की बेदखली की ईप्सा करते हुए तारीख 17 मई, 1974 को वर्तमान बेदखली के लिए वाद फाइल किया गया था, जिसे प्रतिवादी-फर्म के साझेदारों, श्री अजय गोयल और श्री शंकर लाल सोमानी द्वारा श्री रामेश्वर लाल भदादा-वर्तमान अपीलार्थी-वादी का पति के पक्ष में तारीख 12 नवम्बर, 1968 को निष्पादित किराया नोट प्रदर्श-4 के अधीन किराए पर दिया गया था । अन्य बातों के अलावा, उक्त किराया नोट के खंड 3 में यह कथित था कि नोहरा (विवादित भूमि) का खाली कब्जा वापस देते समय किराएदार खर्चे, यदि कोई हो, जो उक्त भू-खंड पर उसके द्वारा किया गया हो, के एवज में कोई दावा नहीं करेगा । मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी द्वारा यह दावा करते हुए बेदखली की ईप्सा की गई थी कि तारीख 31 मार्च, 1973 को वाद परिसर-भू-खंड, कुटुम्ब के आंशिक विभाजन के पश्चात् उसके हिस्से में आ गया था । अन्य बातों के अलावा,

वाद किराया संदाय में व्यतिक्रम, वाद सम्पत्ति में तात्विक परिवर्तन और मकान मालकिन की सद्भाविक आवश्यकता के आधार पर फाइल किया गया था । उसने वादपत्र के पैरा 7 में यह भी दावा किया था कि उसने तारीख 17 अक्तूबर, 1973 के नोटिस द्वारा तारीख 15 अक्तूबर, 1973 से प्रतिवादी-किराएदार के पट्टे/किराएदारी को समाप्त कर दिया था ।

3. विद्वान् मुंसिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, भीलवाड़ा के विचारण न्यायालय ने तारीख 16 मई, 1980 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा वाद सं. 154/1974 को खारिज कर दिया और अन्य बातों के साथ विवाद्यक सं. 3 पर यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत भू-खंड पर निर्माण तत्कालीन मकान मालिक श्री रामेश्वर लाल भदादा जो वाद परिसरों से मात्र 700 मीटर की दूरी पर रह रहा था, की सहमति और उपमति से किया गया था और प्रदर्श-4 किराया नोट के खंड 3 से भी यह उपदर्शित होता है कि प्रश्नगत निर्माण मकान मालिक की सहमति से किया गया था ।

4. व्यतिक्रम का मुद्दा भी वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था, इसी प्रकार, तात्विक परिवर्तन और सद्भाविक आवश्यकता के मुद्दे भी वादी के विरुद्ध विनिश्चित किए गए थे ।

5. उक्त वाद खारिज किए जाने से व्यथित होकर वादी-मकान मालकिन ने विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, भीलवाड़ा के प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील सं. 58/1981 - श्रीमती कमला बनाम बजरंग सॉ मिल्स और अन्य द्वारा अपील फाइल की जिसे भी तारीख 7 जनवरी, 1989 को खर्चों सहित खारिज कर दिया गया और विद्वान् अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के तात्विक परिवर्तन के बारे में विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्षों की पुष्टि कर दी, तथापि, विवाद्यक सं. 1 मकान मालकिन और किराएदार के संबंध के बारे में निकाले गए निष्कर्षों को उलटते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि, प्रश्नगत सम्पत्ति तारीख 31 मार्च, 1973 के आंशिक विभाजन के पश्चात् मकान मालकिन श्रीमती कमला के हिस्से में आ गई थी, जिसकी नोटिस प्रतिवादी को दी गई थी, इसलिए, मकान मालकिन और किराएदार का सम्बन्ध अपीलार्थी-वादी के बराबर सिद्ध होता है । तथापि, विद्वान् अपील न्यायालय प्रतिवादी-किराएदार द्वारा किए गए तात्विक परिवर्तनों से सहमत नहीं हुआ ।

6. उक्त अपीली विनिश्चय से व्यथित होकर मकान मालकिन वादी-अपीलार्थी ने तारीख 5 अप्रैल, 1989 को इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन वर्तमान अपील फाइल

की । इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ द्वारा तारीख 30 अगस्त, 1989 को अपील की स्वीकृति के समय पर निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्न इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विरचित किए गए थे :–

> "1. क्या निचले अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष कि प्रतिवादियों ने पट्टांतरित परिसरों में निर्माण नहीं किया है जिसमें तात्विक रूप से परिवर्तन किए गए हैं, अनुचित हैं और अभिलेख पर के साक्ष्यों के प्रतिकूल हैं ?
>
> 2. क्या प्रथम अपील न्यायालय के यह निष्कर्ष कि प्रतिवादियों ने वादी की अनुज्ञा से पट्टांतरित परिसरों में विवादित निर्माण किया है, अनुचित है ?"

7. अपीलार्थी-वादी के विद्वान् काउंसेल श्री रमित मेहरा ने यह तर्क दिया कि विद्वान् अपील न्यायालय ने पति अभि. सा. 1 श्री रामेश्वर लाल भदादा के साक्ष्य के आधार पर विवाद्यक सं. 3 के निष्कर्षों की पुष्टि करके त्रुटि कारित की है जबकि तारीख 31 मार्च, 1973 के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी-अपीलार्थी श्रीमती कमला पत्नी श्री रामेश्वर लाल भदादा वाद परिसरों की स्वामी हो गई थी और उसने ही तारीख 17 मई, 1974 को वाद फाइल किया था । इसलिए, प्रथमतः उसके पति की सहमति की कोई बात नहीं थी और द्वितीयतः, उन्होंने यह निवेदन किया कि श्री रामेश्वर लाल भदादा ने भी तारीख 15 फरवरी, 1978 को विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित अपनी मुख्य परीक्षा में ऐसी किसी सहमति और अनुज्ञा से स्पष्टतः इनकार किया था । उन्होंने यह निवेदन किया कि किराया नोट (प्रदर्श 4) के खंड 3 का अपीलार्थी-प्रतिवादी द्वारा उक्त भूखंड पर निर्माण करने के लिए कोई सहमति देने का न तो कोई अभिप्राय था न ही ऐसा कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है और इसलिए, जब एक बार वह कुटुम्ब के आंशिक विभाजन के कारण प्रश्नगत भू-खंड की स्वामी अभिनिर्धारित हो गई थी जो तारीख 31 मार्च, 1973 को की गई थी तो जब तक प्रतिवादी-किराएदार ऐसे किसी निर्माण के बारे में अपनी स्वयं की सहमति या अनुमति साबित नहीं करता है, जिसे उन्होंने स्वीकृततः प्रश्नगत भू-खंड (नोहरा) पर किया था तब तक निचला न्यायालय स्पष्टतः यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित करता है कि वाद परिसरों पर कोई तात्विक परिवर्तन नहीं किया गया था और परिणामतः उक्त आधार पर वाद डिक्री किए जाने योग्य है ।

8. उन्होंने यह निवेदन किया कि प्रतिवादियों के लिखित कथन के

पैरा 5 में भी प्रतिवादियों ने स्वीकृततः यह कथन किया है कि उन्होंने प्रश्नगत भू-खंड पर लकड़ी आरा मशीन लगाने के लिए सम्वत् 2025 अर्थात् वर्ष 1968 में श्री रामेश्वर लाल भदादा से प्रश्नगत भू-खंड लिया था और उक्त तारीख तक अर्थात् लिखित कथन फाइल करने की तारीख तक किया गया निर्माण मकान मालिक श्री रामेश्वर लाल भदादा की सहमति और जानकारी से किया गया था और जो तात्विक परिवर्तन की कोटि में नहीं आता है अपितु प्रश्नगत भू-खंड के सुधार की कोटि में आता है ।

9. निचले न्यायालय के दोनों निर्णयों को आक्षेपित करते हुए श्री रमित मेहरा ने तात्विक परिवर्तन के आधार पर बेदखली की डिक्री के लिए प्रार्थना की है ।

10. इसके विपरीत, प्रतिवादी-किराएदारों के विद्वान् काउंसेल श्री विनय जैन ने यह निवेदन किया कि तारीख 31 मार्च, 1973 के पश्चात् किए गए तात्विक परिवर्तन को सिद्ध करने के लिए सबूत का भार वादी-मकान मालकिन पर है क्योंकि स्वीकृततः वह तारीख 31 मार्च, 1973 से ही वाद सम्पत्ति की स्वामी हो गई थी । उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि इसके बारे में कुछ भी सिद्ध नहीं किया गया न ही वाद पत्र में अथवा न ही अभि. सा. 1 श्री रामेश्वर लाल भदादा के साक्ष्य में जो वादी श्रीमती कमला देवी के मुख्तारनामे के रूप में स्वयं साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ था । उन्होंने यह निवेदन किया कि किराया नोट के खंड 3 में प्रतिवादियों-किराएदारों द्वारा प्रश्नगत भूमि पर लकड़ी आरा मिल्स लगाने के लिए भवन निर्माण स्पष्टतः परिकल्पित था और उसके बाद मकान मालिक श्री रामेश्वर लाल भदादा ने मामले में सहमति दी थी, उसकी पत्नी-वर्तमान मकान मालकिन और वादी उससे इनकार नहीं कर सकते हैं । इसलिए, उन्होंने यह निवेदन किया कि बेदखली के लिए वाद खारिज करने वाला निचले न्यायालय की डिक्री निश्चित तौर पर न्यायोचित है ।

11. मैंने, विद्वान् काउंसेलों को एक सीमा तक सुना और अभिलेखों जिसमें अभि. सा. 1 रामेश्वर लाल का कथन, वादपत्र, लिखित कथन और तारीख 12 नवम्बर, 1968 का किराया नोट (प्रदर्श पी-4) सम्मिलित है, का परिशीलन किया ।

12. विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने स्पष्टतः और सही ही यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद परिसरों अर्थात् भू-खंड (नोहरा) का स्वामित्व तारीख 31 मार्च, 1973 से वादी-मकान मालकिन श्रीमती कमला देवी पत्नी श्री रामेश्वर लाल भदादा के पास थी, इस न्यायालय की राय में, किराया

नोट (प्रदर्श 4) के खंड 3 के अनुसार था । यह परिसर में निर्माण करने के लिए किसी अनुज्ञा की कोटि में नहीं आ सकता था । उक्त खंड 3 का मात्र अभिप्राय यह हो सकता है कि प्रतिवादी-किराएदार द्वारा किया गया खर्च, जिसे उसने निर्माण में किया है, जो किसी साम्या में नहीं दिया जा सकता था, उसके लिए प्रतिकर का दावा मकान मालिक से कर सकता है । उक्त किराया नोट पर मात्र प्रतिवादी फर्म के दोनों साझेदारों श्री अजय गोयल और श्री शंकर लाल सोमानी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । श्री रामेश्वर लाल भदादा ने कभी भी इस पर हस्ताक्षर नहीं किए थे । निर्माण की तारीख या अवधि को न तो प्रतिवादी फर्म के साझेदारों के लिखित कथन में न ही उनके कथनों में उल्लेख किया गया है । प्रतिवादियों ने मात्र यह कथन किया है कि जो भी निर्माण किए गए हैं वे श्री रामेश्वर लाल भदादा-वर्तमान वादी-अपीलार्थी का पति की सहमति और सम्मति से किए गए हैं । जब एक बार वादी-मकान मालकिन ने न्यायालय के समक्ष यह पक्षकथन कर दिया कि वाद परिसरों अर्थात् प्रतिवादी-किराएदार द्वारा खाली भू-खंड (नोहरा) में तात्विक परिवर्तन किए गए हैं और ऐसे वाद पत्र के प्रकथनों को पति द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में साबित किया गया है जिसमें वह अपनी प्रतिपरीक्षा में भी उपस्थित हुआ था तो यह दर्शित करने के लिए प्रतिवादी-किराएदारों पर सुस्पष्टतः सबूत का भार आ जाता है कि तात्विक परिवर्तन वादी-मकान मालकिन की सहमति और सम्मति से किया गया है । वर्तमान मकान मालकिन की ऐसी कोई सहमति या सम्मति का भी प्रकथन नहीं किया गया है, जिसे कम से कम प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किसी सबूत से सिद्ध करना चाहिए था । चूंकि बेदखली के मामलों में, स्वामित्व और हक के प्रश्न भी अतिसुसंगत नहीं होते हैं, यद्यपि पति की ग्राह्यता की उपधारणा की जा सकती थी तो भी उसका कोई परिणाम नहीं हो सकता है । चूंकि निर्माण के तथ्य को प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन के पैरा 5 में स्वयं स्वीकार किया गया है, वादी द्वारा साबित करने का प्रश्न प्रथमतः नहीं उठाया गया था और इसके अतिरक्त वादी-अपीलार्थी का पति श्री रामेश्वर लाल भदादा ने न्यायालय के समक्ष अपने कथन में स्पष्टतः कथन किया है कि निर्माण प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किया गया था जिसके लिए उसने कभी भी सहमति नहीं दी थी । प्रतिवादी-किराएदारों द्वारा किए निर्माण की मात्र जानकारी से वर्तमान वादी-मकान मालकिन आबद्ध नहीं हो सकती है । विद्वान् निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकालने में प्रकटतः त्रुटि कारित की है कि प्रतिवादी-किराएदारों ने वादी के पति की सहमति से निर्माण किया है जिससे कि उसकी पत्नी-वादी मकान मालकिन भी आबद्ध है । यह एक गंभीर त्रुटि है, जो आमुख पर ही दिखाई देती है । किराया

नोट का खंड 3 की भी कोई बात प्रतिवादी-किराएदार के पक्ष में नहीं जाती है । मकान मालकिन ने समुचित नोटिस द्वारा किराएदारी समाप्त कर दी थी और तात्विक परिवर्तन के तथ्य को साबित कर दिया गया है, इसलिए, वादी-मकान मालकिन बेदखली की डिक्री पाने की हकदार थी जिसे निचले न्यायालयों द्वारा अन्यायोचित तरीके से इनकार कर दिया गया था ।

13. इसलिए, मकान मालकिन की वर्तमान अपील मंजूर किए जाने योग्य है और तद्नुसार, इसे मंजूर किया जाता है और उपर्युक्त विरचित विधि के सारवान् प्रश्नों का उत्तर अपीलार्थी-मकान मालकिन के पक्ष में और प्रतिवादी-किराएदारों के विरुद्ध दिया जाता है ।

14. आज से 6 माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी वाद सम्पत्ति का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा मकान मालकिन-अपीलार्थी-वादी को सौंपेंगे और जुलाई, 2012 से आरम्भ होने वाले माह से प्रतिमाह अंतःकालीन लाभ अर्थात् 10,000/- रुपए प्रतिमाह का संदाय करेंगे और वादी-मकान मालकिन को खाली कब्जा सौंपे जाने तक के आने वाले माह के 15वें दिन को प्रत्येक माह का निरन्तर अंतःकालीन लाभ या अग्रिम भी प्रत्यर्थी निरन्तर संदाय करते रहेंगे और यदि बेदखली के लिए 6 माह की अवधि तक अंतःकालीन लाभ के संदाय में कोई व्यतिक्रम किया जाता है तो उसे घटा दिया जाएगा और बेदखली की डिक्री तुरन्त निष्पादनीय हो जाएगी । किराएदार वाद परिसरों या उसके किसी भाग का कब्जा या उप-पट्टा किसी अन्य के पक्ष में नहीं करेगा और पूर्वोक्त अवधि के दौरान उसमें किसी तीसरे पक्षकार का हित भी सृजित नहीं करेगा और यदि ऐसा करता है तो उसे शून्य समझा जाएगा । प्रत्यर्थी-प्रतिवादी एक माह की अवधि के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त शर्तों को निगमित करते हुए लिखित वचनबद्ध देंगे और उसकी एक प्रति शपथपत्र के साथ इस न्यायालय में भी प्रस्तुत करेंगे । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि वाद दुकान का शांतिपूर्ण और खाली कब्जा आज से 6 माह की अवधि के भीतर वाद-अपीलार्थी-मकान मालकिन को नहीं सौंपा जाता है तो सामान्य अनुक्रम में डिक्री के निष्पादन के अलावा वादी-अपीलार्थी इस न्यायालय की अवमान अधिकारिता का भी अवलंब लेने के हकदार होंगे । इस निर्णय की एक प्रति तुरन्त विद्वान् निचले न्यायालयों को भी भेजी जाए । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन

बनाम

श्रीमती इंग्लेश और अन्य

तथा

श्रीमती इंग्लेश और अन्य

बनाम

राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य

तारीख 29 सितम्बर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा साक्ष्य के आधार पर तर्कसंगत अधिनिर्णय पारित किया जाना – अपील में चुनौती – ऐसे किसी अधिनिर्णय में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है जो पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर दिया गया हो ।

अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 1996/2012 एवं अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स श्रीमती इंग्लेश और अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2289/2012 मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण एवं राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर महानगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 13 अप्रैल, 2012 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिकाओं के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण एवं राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण,

जयपुर महानगर, जयपुर ने अपने निर्णय दिनांक 13 अप्रैल, 2012 के द्वारा क्लेमेन्ट्स को 35,85,243/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित अपील के माध्यम से अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित अपील के माध्यम से उन्हें दिलाई गई क्लेम राशि को बढ़ाए जाने की प्रार्थना की गई है । अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन के विद्वान् अधिवक्ता श्री वीरेन्द्र अग्रवाल का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया । उनका तर्क है कि इस मामले में संबंधित दुर्घटना में रोडवेज के चालक की कोई गलती नहीं रही है अपितु मोटरसाइकिल चालक की गलती के कारण घटित हुई । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरांत मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरांत अपना निर्णय पारित किया है एवं क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । (पैरा 3, 4 और 6)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	2012 ए. सी. जे. 1428 : **संतोष देवी** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य** ;	5
[2008]	(2008) 11 एस. सी. सी. 366 : **भाकरा ब्यास मैनेजमेन्ट बोर्ड** बनाम **कांता अग्रवाल** ;	4
[2007]	2007(1) एम. ए. सी. डी. 390 (एस. सी.) : **ओरियंटल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **मीना वरियाल** ;	4
[2006]	(2006) 6 एस. सी. सी. 121 : **श्रीमती सरला वर्मा और अन्य** बनाम **देहली ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य** ।	5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की एकलपीठ सिविल विविध अपील सं. 1996 और 2289.

मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, जयपुर द्वारा तारीख 13 अप्रैल, 2012 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वीरेन्द्र अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राम सिंह राठौड़

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 1996/2012 एवं अपीलार्थीगण-क्लेमेन्ट्स श्रीमती इंग्लेश और अन्य की ओर से उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 2289/2012 मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण एवं राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर महानगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 13 अप्रैल, 2012 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है । चूंकि उपरोक्त वर्णित दोनों अपीलों के अंतर्गत अधिकरण के एक ही निर्णय को चुनौती दी गई है, जिससे इनका निस्तारण इस एक ही निर्णय के द्वारा किया जा रहा है ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि क्लेमेंट्स श्रीमती इंग्लेश और अन्य ने अधिकरण के समक्ष क्लेम याचिका इन तथ्यों के साथ पेश की कि दिनांक 24 नवम्बर, 2009 को मृतक राजेन्द्र सिंह विद्याधर नगर से चौमूं हाउस सर्किल होते हुए मोटरसाइकिल द्वारा शिक्षा विभाग के मुख्य कार्यालय जा रहा था कि समय करीब अपराह्न 12.45 बजे पर जब वह चौमूं सर्किल पर पहुंचा तो पीछे से रोडवेज वाहन बस संख्या आर जे 07 पीए-2280 को उसके चालक मदन लाल गुर्जर ने तेज गति व लापरवाही से चलाते हुए मृतक की मोटरसाइकिल के पीछे से टक्कर मार दी तथा घसीटता हुआ दूर तक ले गया तथा राजेन्द्र सिंह को गंभीर चोटें आईं । जिस कारण से उसकी मृत्यु हो गई । इसकी प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 474/2009 पुलिस थाना अशोक नगर में दर्ज कराई गई, जिसमें अनुसंधान के उपरांत धारा 279, 304ए भारतीय दण्ड संहिता में चालान पेश किया गया । मृतक राजेन्द्र सिंह के वारिसान की ओर से क्लेम याचिका अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की गई ।

3. क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिकाओं के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज

किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण एवं राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर महानगर, जयपुर ने अपने निर्णय दिनांक 13 अप्रैल, 2012 के द्वारा क्लेमेन्ट्स को 35,85,243/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित अपील के माध्यम से अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई है एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित अपील के माध्यम से उन्हें दिलाई गई क्लेम राशि को बढ़ाए जाने की प्रार्थना की गई है ।

4. अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन के विद्वान् अधिवक्ता श्री वीरेन्द्र अग्रवाल का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा । उनका तर्क है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करते समय पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से विवेचन व विश्लेषण नहीं किया । उनका तर्क है कि इस मामले में संबंधित दुर्घटना में रोडवेज के चालक की कोई गलती नहीं रही है अपितु मोटरसाइकिल चालक की गलती के कारण घटित हुई । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान विधि दृष्टांत **ओरियंटल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **मीना वरियाल**[1] वाले मामले की ओर आकर्षित किया । उनका कथन है कि मृतक की आयु मृत्यु के समय 45 वर्ष से अधिक थी । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने क्लेमेंट्स को आश्रितता के मद में अधिक राशि दिलाई है एवं गुणक भी सही उपयोग नहीं किया है । उनका कथन है कि मृतक की विधवा को 9,000/- रुपए मासिक पेंशन प्राप्त हो रही है । उनका यह भी कथन है कि भविष्य में मृतक के पुत्र को उसके उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्ति दिए जाने की भी संभावना है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भाकरा ब्यास मैनेजमेन्ट बोर्ड** बनाम **कांता अग्रवाल**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय की ओर आकर्षित किया ।

5. इसके विपरीत अपील संख्या 2289/2012 में क्लेमेंट्स की ओर से बहस करते हुए अधिवक्ता राम सिंह राठौड़ ने तर्क दिया कि विद्वान्

---

[1] 2007 (1) एम. ए. सी. डी. 390 (एस. सी.).

[2] (2008) 11 एस. सी. सी. 366.

अधिकरण ने क्लेमेन्ट्स को कम क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान विधि दृष्टांत **श्रीमती सरला वर्मा और अन्य** बनाम **देहली ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन और अन्य**[1] तथा **संतोष देवी** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड और अन्य**[2] वाले मामलों की ओर आकर्षित कराया । अतः क्लेमेंट्स को दिलाई गई क्षतिपूर्ति राशि को बढ़ाया जाए ।

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरांत मैं यह पाता हूं कि विद्वान् अधिकरण ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करने के उपरांत अपना निर्णय पारित किया है एवं क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है ।

7. अतः अपीलार्थी राजस्थान स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित सिविल विविध अपील संख्या 1996/2012 एवं क्लेमेन्ट्स की ओर से प्रस्तुत उपरोक्त वर्णित अपील संख्या 2289/2012 निरस्त की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण एवं राजस्थान राज्य सहकारी अधिकरण, जयपुर महानगर, जयपुर द्वारा पारित निर्णय दिनांक 13 अप्रैल, 2012 की पुष्टि की जाती है । अपील संख्या 1996/2012 के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मही./मह.

---

[1] (2006) 6 एस. सी. सी. 121.

[2] 2012 ए. सी. जे. 1428.

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लि.

बनाम

श्रीमती मुन्नी देवी और अन्य

तारीख 30 अक्तूबर, 2012

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 147-ख(1), 163-क और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – 2,70,000/- रुपए की प्रतिकर की धनराशि स्वीकार की जानी – बीमा कंपनी द्वारा विधि की अपेक्षाओं पर ध्यान न देने के आधार पर चुनौती – जहां न्यायालय द्वारा साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर दावा याचिका स्वीकार की गई हो वहां ऐसे निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी के समक्ष क्लेम याचिका इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत की कि दिनांक 22 अगस्त, 2002 को रात्रि 2.45 पर पुलिस थाना सरवाड़ से लगभग 15 किलोमीटर दूरी पर उत्तर की दिशा में ग्राम सरहद सराना, अजमेर-कोटा हाईवे रोड पर मृतक रमेश जीप संख्या आर जे 01 पी 1567 में सवारी की हैसियत से बैठकर लोहरवाड़ा जा रहा था, तभी सराना के निकट पहुंचे कि जीप चालक, जीप के आगे चल रही रोडवेज बस को ओवरटेक करना चाहता था, जिससे जीप की गति तेज होने से जीप का संतुलन बिगड़ गया व जीप लहराती हुई सड़क के साईड में होती हुई बबूलों में पलटी खा गई, जिससे रमेश की मौके पर ही मृत्यु हो गई । उक्त दुर्घटना पूर्ण रूप से जीप चालक रामदेव द्वारा जीप को तेज गति, लापरवाही से चलाने से जीप के पलटी खाने से जीप चालक की गलती के कारण घटित हुई है । उक्त दुर्घटना की पुलिस थाना सरवाड़ में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 168/2002 धारा 279, 337 और 304-ए भारतीय दण्ड संहिता के तहत पंजीबद्ध की गई । इस दुर्घटना में रमेश की मृत्यु हो जाने से प्रत्यर्थीगण-क्लेमेंट्स ने कुल 20,00,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने की प्रार्थना की । मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण द्वारा आवेदन स्वीकार करने से व्यथित होकर बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री मधुसूदन का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधि व पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के विपरीत होने से निरस्त किए जाने योग्य है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करने से पूर्व दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत की गई साक्ष्य की विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विवेचना नहीं की । उनका कथन है कि बीमा पालिसी के अन्तर्गत जो उत्तरदायित्व कवर किया गया है वह तृतीय पक्षकार के प्रति है । इस हेतु विद्वान् अधिकरण ने मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147-बी (1) की ओर ध्यान नहीं दिया । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधिसम्मत नहीं है, अतः अपास्त किया जाए । इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता श्री जयप्रकाश गुप्ता ने कथन किया कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधिसम्मत है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण के द्वारा जो विवाद्यक बनाए गए एवं उन पर जो साक्ष्य आई है उसकी सही रूप से विवेचना करते हुए अपना निर्णय पारित किया गया है । उनका कथन है कि इस मामले में क्षतिपूर्ति राशि दिलाने हेतु सही गुणक का उपयोग किया गया है । उनका कथन है कि व्यापक बीमा पालिसी के अन्तर्गत पंजीकृत स्वामी को चोट लगने या उसकी मृत्यु होने पर बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए जिम्मेदार है । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण ने अपने विस्तृत निर्णय के अंतर्गत पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत इस अपील में बल नहीं पाता हूं । अपीलार्थी-बीमा कम्पनी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल विविध अपील निरस्त की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी द्वारा पारित निर्णय दिनांक 20 दिसम्बर, 2003 की पुष्टि की जाती है । (पैरा 4, 5, 6 और 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की एकलपीठ सिविल विविध अपील संख्या 903.

मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी द्वारा तारीख 20 दिसम्बर, 2003 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मधुसूदन वास्ते और अशोक मेहता

प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स की ओर से श्री जयप्रकाश गुप्ता

न्यायमूर्ति महेश चन्द्र शर्मा – अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से यह सिविल विविध अपील मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी द्वारा पारित निर्णय दिनांक 20 दिसम्बर, 2003 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 2,70,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया गया ।

2. प्रकरण के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी के समक्ष क्लेम याचिका इन तथ्यों के साथ प्रस्तुत की कि दिनांक 22 अगस्त, 2002 को रात्रि 2.45 पर पुलिस थाना सरवाड़ से लगभग 15 किलोमीटर दूरी पर उत्तर की दिशा में ग्राम सरहद सराना, अजमेर-कोटा हाईवे रोड पर मृतक रमेश जीप संख्या आर जे 01 पी 1567 में सवारी की हैसियत से बैठकर लोहरवाड़ा जा रहा था, तभी सराना के निकट पहुंचे कि जीप चालक, जीप के आगे चल रही रोडवेज बस को ओवरटेक करना चाहता था, जिससे जीप की गति तेज होने से जीप का संतुलन बिगड़ गया व जीप लहराती हुई सड़क के साईड में होती हुई बबूलों में पलटी खा गई, जिससे रमेश की मौके पर ही मृत्यु हो गई । उक्त दुर्घटना पूर्ण रूप से जीप चालक रामदेव द्वारा जीप को तेज गति, लापरवाही से चलाने से जीप के पलटी खाने से जीप चालक की गलती के कारण घटित हुई है । उक्त दुर्घटना की पुलिस थाना सरवाड़ में प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 168/2002 धारा 279, 337 और 304-ए भारतीय दण्ड संहिता के तहत पंजीबद्ध की गई । इस दुर्घटना में रमेश की मृत्यु हो जाने से प्रत्यर्थीगण-क्लेमेंट्स ने कुल 20,00,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने की प्रार्थना की ।

3. प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स द्वारा प्रस्तुत क्लेम याचिका के नोटिस याचिका के विपक्षीगण को जारी किए गए । विपक्षीगण की ओर से जवाब प्रस्तुत किया गया, जिसमें क्लेम याचिका के तथ्यों से इनकार करते हुए याचिका खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई । विद्वान् अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर पांच विवाद्यक विरचित किए । तत्पश्चात् साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने एवं बहस सुनने के उपरान्त विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी ने अपने निर्णय दिनांक 20 दिसम्बर, 2003 के द्वारा प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स को 2,70,000/- रुपए क्षतिपूर्ति राशि दिलाए जाने का आदेश दिया, जिससे व्यथित होकर अपीलार्थी बीमा कंपनी की ओर से यह सिविल विविध अपील इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर अपीलाधीन निर्णय को अपास्त किए जाने

की प्रार्थना की गई है ।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री मधुसूदन का तर्क है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधि व पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के विपरीत होने से निरस्त किए जाने योग्य है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण ने अपना निर्णय पारित करने से पूर्व दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत की गई साक्ष्य की विधि की अपेक्षित अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए विवेचना नहीं की । उनका कथन है कि बीमा पालिसी के अन्तर्गत जो उत्तरदायित्व कवर किया गया है वह तृतीय पक्षकार के प्रति है । इस हेतु विद्वान् अधिकरण ने मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147-बी (1) की ओर ध्यान नहीं दिया । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधिसम्मत नहीं है, अतः अपास्त किया जाए ।

5. इसके विपरीत प्रत्यर्थीगण-क्लेमेन्ट्स के विद्वान् अधिवक्ता श्री जयप्रकाश गुप्ता ने कथन किया कि विद्वान् अधिकरण का निर्णय विधिसम्मत है । उनका कथन है कि विद्वान् अधिकरण के द्वारा जो विवाद्यक बनाए गए एवं उन पर जो साक्ष्य आई है उसकी सही रूप से विवेचना करते हुए अपना निर्णय पारित किया गया है । उनका कथन है कि इस मामले में क्षतिपूर्ति राशि दिलाने हेतु सही गुणक का उपयोग किया गया है । उनका कथन है कि व्यापक बीमा पालिसी के अन्तर्गत पंजीकृत स्वामी को चोट लगने या उसकी मृत्यु होने पर बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति राशि की अदायगी के लिए जिम्मेदार है । उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान अधिकरण के निर्णय के पैरा 21 ओर 22 की ओर आकर्षित किया, जो निम्न प्रकार है :–

> "21. वाहन के बीमा कवर नोट प्रदर्श-8 व बीमा पालिसी प्रदर्श-ए1 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि बीमा कम्पनी द्वारा वाहन चालक अतिरिक्त वाहन में सवार अन्य नौ व्यक्तियों (सवारियों) को होने वाली क्षतिपूर्ति हेतु भी प्रीमियम राशि ली गई थी तथा मृतक रमेश वाहन में दुर्घटना के समय यात्रा कर रहा था । चूंकि पंजीकृत स्वामी मृतक रमेश वाहन में यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था और यात्रियों की जोखिम हेतु बीमा कम्पनी द्वारा प्रीमियम राशि ली गई तथा आरोपित वाहन का व्यापक बीमा किया गया है, अतः उसमें यात्रियों को होने वाली असीमित क्षति की पूर्ति का दायित्व बीमा कंपनी का है । अतः बीमाधारी की दुर्घटना में मृत्यु होने पर बीमा कम्पनी प्रतिकर के भुगतान हेतु उत्तरदायी है । इस बीमा पालिसी

प्रदर्श-8 व प्रदर्श-ए1 में बीमा कम्पनी ने जिन परिस्थितियों को अपवर्जित किया है, उनमें केवल मात्र भूकम्प, बाढ़ और दंगों की परिस्थितियों में ही स्वयं को उत्तरदायी होना नहीं माना है तथा एन. ए. डब्ल्यू. 1 हरीकृष्ण मोटवानी के कथन से भी यह स्पष्ट है कि प्रदर्श-ए1 बीमा पालिसी में यह तथ्य अंकित नहीं है कि वाहन के पंजीकृत स्वामी को कौन सी चोट व क्षति हेतु बीमा कम्पनी क्षतिपूर्ति नहीं करेगी । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रदर्श-8 व प्रदर्श-ए1 में बीमा कम्पनी द्वारा ऐसी कोई शर्त अंकित नहीं की गई कि वह वाहन के पंजीकृत स्वामी को यात्री के रूप में यात्रा करने पर बीमित वाहन के दुर्घटनाग्रस्त होने पर बीमित वाहन के पंजीकृत स्वामी को कोई क्षतिपूर्ति नहीं करेगी । अतः हमारी राय में अप्रार्थी संख्या 2 की ओर से प्रस्तुत न्यायिक दृष्टांत तृतीय पक्ष को होने वाली क्षति से संबंधित है, अतः न्यायिक दृष्टांतों से अप्रार्थी सं. 2 को कोई लाभ नहीं मिलता । जबकि 2002 (2) ए. सी. सी. (म. प्र.) 52, ए. आई. आर. 2000 (एस. सी.) 2532 एवं 2001 एस. ए. आर. (सिविल) 211 में प्रतिपादित सिद्धांतों से यह स्पष्ट है कि व्यापक बीमा पालिसी के अंतर्गत पंजीकृत स्वामी को दुर्घटना में चोट लगने अथवा मृत्यु कारित होने की स्थिति में बीमा कम्पनी मृतक पंजीकृत स्वामी के उत्तराधिकारियों को क्षतिपूर्ति का भुगतान करने हेतु उत्तरदायी है । यदि अप्रार्थी संख्या 2 के विद्वान् अधिवक्ता के इस तर्क को माना जाए कि पंजीकृत स्वामी को स्वयं के वाहन में दुर्घटनाग्रस्त होने पर तृतीय पक्षकार के रूप में क्षतिपूर्ति नहीं दिलाई जा सकती, तब व्यापक बीमा पालिसी का कोई महत्व ही नहीं रह जाएगा और इसका परोक्ष रूप से तात्पर्य यह होगा कि पंजीकृत स्वामी यदि स्वयं यात्री के रूप में स्वयं के वाहन का व्यापक बीमा होने के उपरान्त भी वह किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होगा । मेरे विचार से मोटर वाहन अधिनियम में दुर्घटना होने की परिस्थिति में क्षतिपूर्ति के संबंध में जो प्रावधान हैं, उनका उद्देश्य किंचित भी ऐसा नहीं है कि वाहन की व्यापक बीमा पालिसी होने के उपरान्त भी बीमा कम्पनी को वाहन के पंजीकृत स्वामी को होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं माना जाए । मोटर वाहन अधिनियम की धारा 147(1)बी(1) के अनुसार बीमा कम्पनी को किसी भी व्यक्ति (any person) को होने वाली क्षति की पूर्ति हेतु उत्तरदायी माना गया है तथा किसी भी व्यक्ति से तात्पर्य केवलमात्र तृतीय पक्ष से नहीं माना

जा सकता है, बल्कि पंजीकृत स्वामी भी इस परिभाषा में सम्मिलित होना ही माना जाएगा ।

22. अतः उपरोक्त विवेचन से, बीमा पालिसी की प्रकृति जो कि व्यापक बीमा पालिसी है, तथा उस बीमा पालिसी में आरोपित वाहन में सवार नौ यात्रियों के लिए, लिए गए अतिरिक्त प्रीमियम के कारण तथा 2002 (2) ए. सी. सी. (म. प्र.) 52, ए. आई. आर. 2000 (एस. सी.) 2532 व 2011 एस. ए. आर. (सिविल) 211 न्यायिक दृष्टांतों में प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अप्रार्थी संख्या 2 यह सिद्ध करने में पूर्णतया असफल रहा है कि उसके उत्तर मांगपत्र की चरण संख्या 28 से 35 के आधार पर प्रार्थीगण का यह मांगपत्र निरस्त होने योग्य है । अतः इस विवाद्यक को सिद्ध करने में वह असफल रहा है । अतः यह विवाद्यक अप्रार्थी संख्या 2 के विरुद्ध व प्रार्थीगण के पक्ष में निर्णीत किया जाता है ।"

6. मैंने उभयपक्ष के विद्वान् अधिवक्तागण के तर्कों पर मनन किया । अपीलाधीन निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया । विद्वान् अधिकरण ने अपने विस्तृत निर्णय के अंतर्गत पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का सही रूप से मूल्यांकन करते हुए क्लेमेन्ट्स को उपयुक्त क्षतिपूर्ति राशि दिलाई है । अपीलाधीन निर्णय का अवलोकन करने के उपरान्त मैं अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत इस अपील में बल नहीं पाता हूं ।

7. अतः अपीलार्थी बीमा कम्पनी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल विविध अपील निरस्त की जाती है । मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, केकड़ी द्वारा पारित निर्णय दिनांक 20 दिसम्बर, 2003 की पुष्टि की जाती है । अपील के साथ संलग्न स्थगन प्रार्थनापत्र भी निरस्त किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

ब्रज बिहारी लाल

बनाम

श्रीमती सरवी देवी और अन्य

तारीख 25 अगस्त, 2011

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा

हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 – धारा 104 – भूमि पर प्रतिकूल कब्जा – सांपत्तिक अधिकारों के लिए दावा – मुआवज़ा अधिकारी द्वारा सांपत्तिक अधिकारों की मंजूरी – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – सिविल न्यायालय द्वारा सांपत्तिक अधिकारों के प्रश्न पर केवल वहां विचार किया जा सकता है जहां यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया हो कि अधिनियम द्वारा परिकल्पित कानूनी प्राधिकारियों द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों का या अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया था ।

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल यह नियमित द्वितीय अपील तारीख 21 सितंबर, 2000 को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थी का वाद खारिज करते हुए विद्वान् उप न्यायाधीश, घुमरविन के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी ने अभिलेख पर तारीख 9 जुलाई, 1960 के उस विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए./प्रदर्श पी. ए. को साबित किया है, जिसके द्वारा वादी ने श्रीमती हरदेई से भूमि क्रय की थी । प्रदर्श पी. पी. का, जो कि मिसल हकियत इस्तेमाल की प्रति है, अवलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि इसमें वादी को स्वामी के रूप में अभिलिखित किया गया है और प्रतिवादी को किराएदार के रूप में कब्जा धारित किए हुए अभिलिखित किया गया है । वर्ष 1971-72 की जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. आर. का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि वाद भूमि प्रतिवादी के स्वामित्व और कब्जे में अभिलिखित की गई है । खरीफ 1965 से रबी 1967 तक के खसरा गिरदावरी, प्रदर्श पी. क्यू. की प्रति का अवलोकन करने से यह उपदर्शित होता है कि स्वामी के कालम में वादी का नाम

अभिलिखित किया गया है जबकि किराएदार के रूप में कब्जा धारित किए हुए प्रतिवादी का नाम अभिलिखित किया गया है । प्रतिवादी ने अपने कथन में यह स्वीकार किया है कि श्रीमती हरदेई भूमि की स्वामी थी और वह श्रीमती हरदेई की भूमि पर खेती करता था तथा उसने यह दावा नहीं किया था कि वह वादी की भूमि पर खेती करता था । उसने वर्ष 1960 में सांपत्तिक अधिकारों के अर्जन के लिए आवेदन फाइल किया और उसे वाद भूमि पर सांपत्तिक अधिकार मंजूर कर दिए गए थे और इस आदेश की तारीख 24 सितंबर, 1970 के प्रदर्श डी. ए. द्वारा विद्वान् ज़िला न्यायाधीश द्वारा पुष्टि की गई थी । जैसाकि उपरोक्त राजस्व अभिलेख से उपदर्शित होता है कि वर्ष 1971-72 के लिए जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. आर. है और मुआवज़ा अधिकारी को उस जमाबंदी की प्रति पर विचार करना चाहिए था, जो कि सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि के समय अस्तित्व में थी । विचारार्थ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मुआवज़ा अधिकारी द्वारा प्रतिवादी को सांपत्तिक अधिकार प्रदत्त करने संबंधी आदेश पर सिविल न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है या नहीं क्योंकि यह सिविल न्यायालय की अधिकारिता से संबद्ध है और सिविल न्यायालय ही मामले के तथ्यों पर विचार कर सकता है । सांपत्तिक अधिकारों के प्रश्न पर सिविल न्यायालय द्वारा केवल वहां विचार किया जा सकता है जहां यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया हो कि अधिनियम द्वारा परिकल्पित कानूनी प्राधिकारियों ने न्यायालय प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों के अनुरूप कार्य नहीं किया था या जहां अधिनियम के उपबंधों का पालन नहीं किया गया था । इस संबंध में वाद पत्र में कोई अभिकथन नहीं किए गए थे, जबकि वाद तारीख 13 अप्रैल, 1971 को फाइल किया गया था और तारीख 8 सितंबर, 1976 को विनिश्चित किया गया था और अपील तारीख 26 मई, 1981 को फाइल की गई थी और तारीख 21 सितंबर, 2000 को विनिश्चित की गई थी तथा उस समय तक तारीख 21 सितंबर, 1990 को माननीय पूर्ण न्यायपीठ द्वारा पहले ही निर्णय पारित किया जा चुका था । वादी वाद को वापस ले सकता था । वाद को पुन: उपरोक्त पैराओं में दिए गए निदेशों के अनुसार नए सिरे से फाइल कर सकता था जिसके अधीन मुआवज़ा अधिकारी के आदेश को आक्षेपित किया जा सकता था जो कि कभी भी नहीं किया गया था जबकि पक्षकार वाद लगातार लड़ते रहे थे जो कि तारीख 8 सितंबर, 1976 को विनिश्चित किया गया था और उस समय तक दोनों पक्षकारों को यह स्पष्ट हो गया था कि न्यायालय द्वारा ऐसी विधि अधिकथित की गई है । अब

न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करता है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल न्यायालय को अधिकारिता थी किंतु ये निष्कर्ष विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा उलट दिए गए हैं जबकि प्रतिवादी द्वारा कोई प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किए गए थे और न ही इस संबंध में विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया गया था । न्यायालय का यह मत है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश उपरोक्त विनिश्चय का अवलंब लेने में सही नहीं था । इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित थी और इसलिए तब न्यायालय की अधिकारिता का प्रश्न उठा था तब यह आवश्यक नहीं था क्योंकि प्रतिवादी द्वारा कोई भी प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किए गए थे और इसलिए अपील न्यायालय द्वारा निर्णय पर विचार नहीं किया जा सकता था । न्यायालय विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि चुनिया देवी वाले मामले में न्यायालय के निष्कर्षों को दृष्टिगत रखते हुए सिविल न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित थी । विद्वान् एकल न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के जो कि न्यायालय पर आबद्धकर है, प्रतिकूल था और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त निर्णय के प्रति भी निर्देश किया था, किंतु यह न्यायालय पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय से आबद्ध है जिसने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल न्यायालय की अधिकारिता वर्जित है । (पैरा 10, 13, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1997]	1997 (1) शिमला एल. सी. 255 : **श्री प्रीतम चन्द और अन्य** बनाम **श्री कृष्ण कुमार और अन्य** ;	17
[1994]	ए. आई. आर. 1994 हिमाचल प्रदेश 167 : **तुलसा सिंह** बनाम **आज्ञा राम और अन्य** ;	12
[1991]	1991 (2) एस. एल. जे. 1082 : **चुनिया देवी** बनाम **जिन्दू राम** ;	9, 14, 16
[1976]	1976 पी. एल. जे. 26 : **अमल कुमार और अन्य** बनाम **भूपिंदर सिंह और अन्य** ;	11

[1968] 1968 डी. एल. टी. (जिल्द-4) 384 :
बालक राम बनाम **कन्हैया** । 17

सिविल अपीली अधिकारिता : 2000 की नियमित द्वितीय अपील सं. 637.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आनन्द शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री राजीव जीवन

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा – अपीलार्थी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल यह नियमित द्वितीय अपील तारीख 21 सितंबर, 2000 को विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने अपीलार्थी का वाद खारिज करते हुए विद्वान् उप न्यायाधीश, घुमरविन के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की है ।

2. संक्षिप्त में मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी के हित पूर्वाधिकारी अर्थात् चुन्नी लाल, (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वादी" कहा गया है) ने मूल प्रत्यर्थी/प्रतिवादी गांधी के विरुद्ध घोषणा और व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था जिसका अब उसके विधिक प्रतिनिधियों अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 1(ए) से 1(च) द्वारा प्रतिनिधित्व किया जा रहा है और (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "प्रतिवादी" कहा गया है) । वादी द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि वाद भूमि 16.4 बीघा वादी की मिलकियत है जो कि विभिन्न खसरा संख्याओं में है, जिनको विस्तार से वाद में दर्शाया गया है । वादी ने यह भूमि तारीख 9 जुलाई, 1960 के विक्रय-विलेख द्वारा श्रीमती हरदेई से क्रय की थी । यह अभिकथित किया गया है कि जब वादी ने वाद भूमि श्रीमती हरदेई से क्रय की थी, तब वह स्वामी के रूप में भूमि पर काबिज़ थी । उसके पश्चात्, वादी ने वर्ष 1960 में भूमि में खरीफ की फसल बोई थी किंतु वह गांव से बाहर चला गया था और प्रतिवादी ने वर्ष 1961 में वाद भूमि पर रबी की फसल बोई थी । यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी ने बलपूर्वक वाद भूमि पर कब्जा कर लिया था और स्वयं को अभिधृति धारक के रूप में उपदर्शित करते हुए मुआवज़ा अधिकारी के समक्ष सांपत्तिक अधिकारों के अर्जन के लिए आवेदन फाइल किया था । यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी को तारीख 27 अप्रैल, 1970 के आदेश द्वारा वाद भूमि में सांपत्तिक अधिकार अर्जित हो गए हैं जिसकी बाद

में अपील में विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 24 सितंबर, 1970 के आदेश द्वारा पुष्टि भी कर दी थी । यह अभिकथित किया गया है कि चूंकि प्रतिवादी कभी भी वादी का किराएदर नहीं रहा था इसलिए मुआवज़ा अधिकारी का आदेश विधिविरुद्ध है और अधिकारिता के बिना किया गया है तथा उसे प्रतिवादी को सांपत्तिक अधिकार प्रदत्त करने की अधिकारिता नहीं थी । इस प्रकार यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी भूमि पर अवैध रूप से काबिज़ है और वह वादी को 1968 की रबी की फसल से 1970 तक 400/- रुपए अन्त: लाभों के रूप में देने का जिम्मेदार है ।

3. प्रतिवादी ने अधिकारिता, ग्राह्यता और परिसीमा संबंधी प्रारंभिक आक्षेप किए । गुण-दोष के आधार पर यह दलील दी गई थी कि वादी भूमि का स्वामी नहीं था अपितु प्रतिवादी श्रीमती हरदेई के समय से भूमि का स्वामी है क्योंकि वह उसका किराएदार था । वादी का वाद भूमि पर कभी भी कब्जा नहीं रहा था । प्रतिवादी ने मुआवज़ा अधिकारी से वाद भूमि पर सांपत्तिक अधिकार प्राप्त किए थे, जिसकी विद्वान् जिला न्यायाधीश ने पुष्टि की थी, जो कि वादी पर आबद्धकर है ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक निर्धारित किए थे :–

"1. क्या वादी विवादित भूमि का स्वामी है ?

2. क्या प्रतिवादी ने बलपूर्वक, जैसा अभिकथित किया गया है, 1961 में रबी की फसल के दौरान, विवादित भूमि पर कब्जा कर लिया था ? ओ. पी. पी.

3. क्या वाद समय के भीतर फाइल किया गया है ?

4. क्या मुआवज़ा अधिकारी का तारीख 27 अप्रैल, 1970 का आदेश और जिला न्यायाधीश का तारीख 24 सितंबर, 1970 का आदेश शून्य, अवैध और गलत है और अधिकारिता के बिना पारित किया गया है ? ओ. पी. पी.

5. क्या वादी अन्त: लाभों का हकदार है, जैसाकि दावा किया गया है, यदि हां तो कितनी राशि का ? ओ. पी. पी.

6. क्या न्यायालय को वाद का विचारण करने की अधिकारिता नहीं है ? ओ. पी. डी.

7. क्या वाद सही रूप में नहीं है ? ओ. पी. डी.

8. क्या वाद पूर्व न्याय के सिद्धांत के आधार पर वर्जित है ?

9. क्या वाद का न्यायालय फीस और अधिकारिता की दृष्टि से उचित रूप से मूल्यांकन किया गया है ? ओ. पी. पी.

10. क्या प्रतिवादी श्रीमती हरदेई का किराएदार था, यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. डी.

11. अनुतोष ।"

5. विचारण पूरा होने पर विचारण न्यायालय ने वादी का वादपत्र नामंजूर कर दिया । वादी ने इसके विरुद्ध अपील फाइल की थी और विद्वान् जिला न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा अपील को खारिज कर दिया था ।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादी ने उस भूमि को क्रय किया था जो कि स्वामी के नाम और कब्जे में अभिलिखित थी और वह काबिज़ हो गया था । यह दलील दी गई है कि राजस्व अधिकारी द्वारा प्रविष्टियां विधि के अनुसार संशोधित नहीं की गई थीं और मुआवज़ा अधिकारी को प्रतिवादी को सांपत्तिक अधिकारों को अंतरित करने की अधिकारिता नहीं थी और इसलिए दोनों निचले न्यायालयों के निष्कर्ष प्रतिकूल होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य हैं । यह भी दलील दी गई है कि विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस मामले में सिविल न्यायालय को अधिकारिता थी और प्रतिवादी द्वारा विवाद्यक सं. 6 के निष्कर्षों के संबंध में प्रति आपत्तियां फाइल नहीं की गई थीं जिसके आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वाद के विचारण की सिविल न्यायालय को अधिकारिता थी ।

8. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय में अभिलिखित आधारों पर निर्णय का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि सिविल न्यायालय को इस प्रश्न पर, कि क्या प्रतिवादी को गलत रूप से सांपत्तिक अधिकार प्रदत्त किए गए हैं, विचार करने की अधिकारिता नहीं थी और इसलिए दावा पोषणीय नहीं था ।

9. अभिलेख का अवलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि प्रश्नगत अपील विधि के इन तात्विक प्रश्नों पर ग्रहण की गई थी कि क्या मुआवज़ा

अधिकारी अपना आदेश केवल मुआवज़े की राशि के अवधारण तक ही सीमित कर सकता है न कि किराएदार की हैसियत के प्रश्न तक । अपील इस प्रश्न पर ग्रहण की गई थी कि क्या विद्वान् अपील न्यायालय, इस न्यायालय द्वारा **चुनिया देवी** बनाम **जिन्दू राम**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेने में सही था जबकि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा इस तथ्य के बारे में निष्कर्ष दिया गया था कि कोई प्रति-आक्षेप विवाद्यक सं. 6 के अधीन के निष्कर्षों के विरुद्ध फाइल नहीं किए गए थे ।

10. वादी ने अभिलेख पर तारीख 9 जुलाई, 1960 के उस विक्रय-विलेख प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए./प्रदर्श पी. ए. को साबित किया है, जिसके द्वारा वादी ने श्रीमती हरदेई से भूमि क्रय की थी । प्रदर्श पी. पी. का, जो कि मिसल हकियत इस्तेमाल की प्रति है, अवलोकन करने से यह होता है कि इसमें वादी को स्वामी के रूप में अभिलिखित किया गया है और प्रतिवादी को किराएदार के रूप में कब्जा धारित किए हुए अभिलिखित किया गया है । वर्ष 1971-72 की जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. आर. का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि वाद भूमि प्रतिवादी के स्वामित्व और कब्जे में अभिलिखित की गई है । खरीफ 1965 से रबी 1967 तक के खसरा गिरदावरी, प्रदर्श पी. क्यू. की प्रति का अवलोकन करने से यह उपदर्शित होता है कि स्वामी के कालम में वादी का नाम अभिलिखित किया गया है जबकि किराएदार के रूप में कब्जा धारित किए हुए प्रतिवादी का नाम अभिलिखित किया गया है । प्रतिवादी ने अपने कथन में यह स्वीकार किया है कि श्रीमती हरदेई भूमि की स्वामी थी और वह श्रीमती हरदेई की भूमि पर खेती करता था तथा उसने यह दावा नहीं किया था कि वह वादी की भूमि पर खेती करता था । उसने वर्ष 1960 में सांपत्तिक अधिकारों के अर्जन के लिए आवेदन फाइल किया था और उसे वाद भूमि पर सांपत्तिक अधिकार मंजूर कर दिए गए थे और इस आदेश की तारीख 24 सितंबर, 1970 के प्रदर्श डी. ए. द्वारा विद्वान् ज़िला न्यायाधीश द्वारा पुष्टि की गई थी । जैसाकि उपरोक्त राजस्व अभिलेख से उपदर्शित होता है कि वर्ष 1971-72 के लिए जमाबंदी की प्रति, प्रदर्श पी. आर. है और मुआवज़ा अधिकारी को उस जमाबंदी की प्रति पर विचार करना चाहिए था, जो कि सांपत्तिक अधिकारों की पुष्टि के समय अस्तित्व में थी ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय का यह समाधान करने का प्रयास किया है कि दुरुस्ती का आदेश विधि के अनुसार पारित नहीं किया गया था । इसके समर्थन में उन्होंने **अमल कुमार और अन्य**

---

[1] 1991 (2) एस. एल. जे. 1082.

बनाम **भूपिन्दर सिंह और अन्य**[1], (1972 की नियमित द्वितीय अपील सं. 540 जो कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 23 जुलाई, 1973 को विनिश्चित की गई थी) वाले मामले के विनिश्चय का यह उपदर्शित करने के लिए अवलंब लिया है कि वित्त आयुक्त द्वारा विहित रीति में खसरा गिरदावरी की प्रविष्टियों में परिवर्तन के लिए निर्देश किया गया था और निदेशों के अतिक्रमण में किए गए किसी परिवर्तन को अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया गया था ।

12. **तुलसा सिंह** बनाम **आज्ञा राम और अन्य**[2] वाले मामले के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया गया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि भू-राजस्व निर्देशिका में दिए गए निदेशों का पालन नहीं किया गया था और इस समवर्ती निष्कर्ष में कि प्रविष्टि में परिवर्तन गलत और अवैध था, द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया गया था ।

13. विचारार्थ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या मुआवज़ा अधिकारी द्वारा प्रतिवादी को सांपत्तिक अधिकार प्रदत्त करने संबंधी आदेश पर सिविल न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है या नहीं क्योंकि यह सिविल न्यायालय की अधिकारिता से संबंद्ध है और सिविल न्यायालय ही मामले के तथ्यों पर विचार कर सकता है ।

14. मैं विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अवलंब लिए गए **चुनिया देवी** बनाम **जिंदू राम**[3] वाले मामले के विनिश्चय का निर्देश करना चाहूंगा, जिसमें इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि सांपत्तिक अधिकार प्रदत्त करने के प्रश्न पर सिविल न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित थी । पैरा 64 में किया गया संप्रेक्षण सुसंगत है जो इस प्रकार है :–

> "64. हमने इस मामले में ऊपर विचार किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि विधान-मंडल ने हिमाचल प्रदेश किराएदारी और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 के उपबंधों में पूर्ण संहिता को परिकल्पित किया था और इसके साथ-साथ भूमि सुधारों के प्रयोजन को प्रभावी बनाने के लिए तथा सिविल न्यायालय द्वारा इससे संबद्ध किसी प्रश्न के अवधारण को विवर्जित किया है ।

---

[1] 1976 पी. एल. जे. 26.

[2] ए. आई. आर. 1994 हिमाचल प्रदेश 167.

[3] 1991 (2) एस. एल. जे. 1082.

उत्तर

अत: हमारा उत्तर यह है कि –

(क) कि हिमाचल प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1954 के अधीन सक्षम प्राधिकारी के द्वारा किया गया कोई आदेश केवल इस सीमा तक सिविल न्यायालय के समक्ष आक्षेपित किया जा सकता है यदि वह विषय धारा 37(3) की परिसीमा और उस अधिनियम की धारा 46 के अन्तर्गत आता है ;

(ख) हिमाचल प्रदेश अभिधृति और भूमि सुधार अधिनियम, 1972 की धारा 104 के अधीन प्रदत्त किए गए सांपत्तिक अधिकारों से संबंधित प्रश्न पर सिविल न्यायालय को विचार करने की अधिकारिता नहीं होगी, सिवाय उस मामले के जिसमें यह पाया जाता है कि अधिनियम द्वारा परिकल्पित कानूनी प्राधिकारियों ने न्यायिक प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों के अनुसार कार्रवाई नहीं की थी या जहां अधिनियम के उपबंधों का पालन नहीं किया गया था ।"

15. उपरोक्त विनिश्चय से यह स्पष्ट है कि सांपत्तिक अधिकारों के प्रश्न पर सिविल न्यायालय द्वारा केवल वहां विचार किया जा सकता है जहां यह विनिर्दिष्ट अभिकथन किया गया हो कि अधिनियम द्वारा परिकल्पित कानूनी प्राधिकारियों ने न्यायालय प्रक्रिया के मूल सिद्धांतों के अनुरूप कार्य नहीं किया था या जहां अधिनियम के उपबंधों का पालन नहीं किया गया था । इस संबंध में वादपत्र में कोई अभिकथन नहीं किए गए थे, जबकि वाद तारीख 13 अप्रैल, 1971 को फाइल किया गया था और तारीख 8 सितंबर, 1976 को विनिश्चित किया गया था और अपील तारीख 26 मई, 1981 को फाइल की गई थी और तारीख 21 सितंबर, 2000 को विनिश्चित की गई थी तथा उस समय तक तारीख 21 सितंबर, 1990 को माननीय पूर्ण न्यायपीठ द्वारा पहले ही निर्णय पारित किया जा चुका था । वादी वाद को वापस ले सकता था । वाद को पुन: उपरोक्त पैराओं में दिए गए निदेशों के अनुसार नए सिरे से फाइल कर सकता था जिसके अधीन मुआवज़ा अधिकारी के आदेश को आक्षेपित किया जा सकता था जो कि कभी भी नहीं किया गया था जबकि पक्षकार वाद लगातार लड़ते रहे थे जो कि तारीख 8 सितंबर, 1976 को विनिश्चित किया गया था और उस समय तक दोनों पक्षकारों को यह स्पष्ट हो गया था कि न्यायालय द्वारा ऐसी विधि अधिकथित की गई है ।

16. अब मैं इस प्रश्न पर विचार करता हूं कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल न्यायालय को अधिकारिता थी किंतु ये निष्कर्ष विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा उलट दिए गए हैं जबकि प्रतिवादी द्वारा कोई प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किए गए थे और न ही इस संबंध में विधि का सारवान् प्रश्न विरचित किया गया था । मेरा यह मत है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश उपरोक्त विनिश्चय का अवलंब लेने में सही नहीं था । इस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित थी और इसलिए जब न्यायालय की अधिकारिता का प्रश्न उठा था तब यह आवश्यक नहीं था क्योंकि प्रतिवादी द्वारा कोई भी प्रति-आक्षेप फाइल नहीं किए गए थे और इसलिए अपील न्यायालय द्वारा निर्णय पर विचार नहीं किया जा सकता था । मैं विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि **चुनिया देवी**[1] वाले मामले में न्यायालय के निष्कर्षों को दृष्टिगत रखते हुए सिविल न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित थी ।

17. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने **बालक राम** बनाम **कन्हैया**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आवेदक के किराएदार होने के प्रश्न पर मुआवज़ा अधिकारी का विनिश्चय निश्चयात्मक नहीं था और इस प्रश्न को विनिश्चित करने के लिए सिविल न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित नहीं हुई थी । इस न्यायालय द्वारा **श्री प्रीतम चन्द और अन्य** बनाम **श्री कृष्ण कुमार और अन्य**[3] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया है, जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया था कि हिमाचल प्रदेश किराएदारी और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 104 के अधीन प्रश्न पर विचार करने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता विवर्जित नहीं हुई थी । विद्वान् एकल न्यायालय (न्यायाधीश) द्वारा अभिव्यक्त मत पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के जो कि न्यायालय पर आबद्धकर है, प्रतिकूल था और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त निर्णय के प्रति भी निर्देश किया था, किंतु यह न्यायालय पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय से आबद्ध है जिसने यह अभिनिर्धारित किया है कि सिविल न्यायालय की अधिकारिता वर्जित है ।

---

[1] 1991 (2) एस. एल. जे. 1082.

[2] 1968 डी. एल. टी. (जिल्द-4) 384.

[3] 1997 (1) शिमला एल. सी. 255.

18. तद्नुसार उपरोक्त चर्चा के आधार पर मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज करने के लिए विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष उस समय प्रवृत्त विधि के अनुसार पुष्ट किए जाने योग्य हैं और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में कोई भी बल नहीं है, जो तद्नुसार खारिज की जाती है । तथापि, पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

भट./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 132 **हिमाचल प्रदेश**

आनन्द सिंह वर्मा (डा.)

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और एक अन्य

तारीख 30 अगस्त, 2011

न्यायमूर्ति राजीव वर्मा

केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियम, 1972 – नियम 13 [सपठित हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय पेंशन स्कीम का पैरा 1.11 (i)] – विश्वविद्यालय में सहायक सिविल सर्जन ग्रेड-1 (जी) के पद पर नियुक्ति – पेंशन – पूर्व सेवा का लाभ – पेंशन की हक़दारी – यदि पदधारी राज्य सरकार से प्राप्त सेवानिवृत्ति फायदों को दस्तावेजी साक्ष्य सहित और प्राप्त की गई धनराशि पर ब्याज सहित धनराशि का प्रतिदाय कर देता है तो वह वर्तमान सेवा पेंशन और सेवानिवृत्ति फायदों के लिए हक़दार होगा ।

याची को पूर्व सेवा का फायदा न देते हुए पेंशन और सेवानिवृत्ति फायदे देने से इनकार किया गया था और इस संबंध में उसके द्वारा फाइल किए गए अभ्यावेदन खारिज कर दिए गए थे जिससे व्यथित होकर याची ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची को तारीख 21 दिसंबर, 1970 को सिविल सहायक सर्जन ग्रेड-1 (जी.) के रूप में नियुक्त किया गया था । उसने उसी हैसियत में लगातार तारीख 29 अप्रैल, 1985 तक कार्य किया था । उसने

14 वर्षों से अधिक की सेवा की है । विद्वान् वरिष्ठ अपर महाधिवक्ता श्री आर. के. शर्मा द्वारा दिए गए उत्तर और की गई बहस के अनुसार याची की नियुक्ति अस्थायी आधार पर की गई थी, न कि तदर्थ आधार पर । उसे तारीख 23 अक्तूबर, 1987 को तारीख 1 जनवरी, 1981 से दक्षतारोध पार करने की अनुमति दी गई थी । इसके पश्चात् पुन: तारीख 22 फरवरी, 1985 से उसे दक्षतारोध पार करने की अनुमति दी गई थी । तारीख 30 जनवरी, 1986 के पत्र द्वारा उसका त्यागपत्र तारीख 30 अप्रैल, 1985 से स्वीकार किया गया था । तारीख 30 जुलाई, 1987 को प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय द्वारा उसे नियमित किया गया था । तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को वह सेवानिवृत्त हो गया है । याची को तारीख 30 अप्रैल, 1985 से विश्वविद्यालय में पद ग्रहण करने तक अस्थायी आधार पर सिविल सहायक सर्जन ग्रेड-1 के पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया गया है । तारीख 28 दिसंबर, 1988 के उपाबंध ए-10 से यह स्पष्ट होता है कि निदेशक, स्वास्थ्य सेवा, हिमाचल प्रदेश द्वारा याची के मामले की सिफारिश की गई थी । सी. सी. एस. (पेंशन) नियम, 1972 के नियम 13 में उल्लिखित भाषा से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी सरकारी सेवक की अर्हक सेवा उस तारीख से आरंभ होगी जिस तारीख को उसने किसी पद का पदभार ग्रहण किया हो और जिस पर उसकी प्रथम नियुक्ति हुई थी चाहे वह अधिष्ठायी रूप से हो या स्थापन्न हो या अस्थायी हैसियत में हुई हो । तारीख 21 दिसंबर, 1970 से तारीख 31 अक्तूबर, 2001 तक की गई याची की सेवा में कोई व्यवधान नहीं है । नियम के साथ संलग्न किए गए टिप्पण से यह दर्शित होता है कि ये उपबंध तारीख 1 जनवरी, 1986 को सेवारत कर्मचारियों पर उनके आमेलन की तारीख पर ध्यान दिए बिना लागू होंगे । पैरा सं. 1.11(i) को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने कर्मचारियों द्वारा विश्वविद्यालय की सेवा ग्रहण करने से पूर्व की गई पूर्व सेवाओं को गणना में लेने का विनिश्चय कर लिया था यदि पदधारी राज्य सरकार से प्राप्त सेवांत सेवानिवृत्ति लाभों के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ, ऐसे लाभों को प्राप्त करने की तारीख से विश्वविद्यालय में जमा करने की तारीख तक राशि पर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से चक्रवृद्धि ब्याज के साथ जमा कर देता है । अतः याची का मामला तारीख 3 मार्च, 1997 के उपाबंध आर-8 के अधीन आता है, क्योंकि उसने 14 वर्षों तक राज्य सरकार के अधीन सेवा की है और उसके पश्चात् उसने आरंभिक रूप से हिमाचल प्रदेश कृषि विश्व विद्यालय, पालमपुर में जी. डी. ओ. 1 के रूप में कार्यभार संभाला था और तदुपरांत

वह तारीख 30 अप्रैल, 1985 से प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सृजन के पश्चात् प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय का कर्मचारी बन गया था । यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी राज्य सरकार द्वारा याची को कोई भी सेवांत पेंशन नहीं दी गई है और उसका मामला तारीख 31 जुलाई, 1989, 18 मई, 1989, 13 मई, 1993 और 31 दिसंबर, 2002 को बार-बार अस्वीकार किया गया था । अत: राज्य द्वारा उसे कुछ भी संदाय न किए जाने के कारण याची द्वारा उसके द्वारा सेवानिवृत्ति संबंधी सेवांत लाभों का प्रतिदाय करने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । (पैरा 6, 7 और 9)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2008 की सी. डब्ल्यू. पी. (टी.) सं. 3090.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री दिलीप शर्मा, अधिवक्ता
प्रत्यथी सं. 1 की ओर से	सर्वश्री आर. के. शर्मा वरिष्ठ अपर महाधिवक्ता और आर. पी. सिंह, सहायक महाधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से	श्री ओंकार जयरथ, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – याची को तारीख 21 दिसंबर, 1970 के ज्ञापन द्वारा सहायक सिविल सर्जन ग्रेड-1 (जी.) के अस्थायी पद पर नियुक्त किया गया था । उसे तारीख 23 अक्तूबर, 1981 को तारीख 1 जनवरी, 1981 से दक्षतारोध पार करने की अनुमति दी गई थी । उसने हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर में जी. डी. ओ. 1 के पद के लिए आवेदन किया था । उसे हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर द्वारा तारीख 27 मार्च, 1985 को नियुक्ति के लिए पत्र भेजा गया था जिसके अनुक्रम में उसने तारीख 30 अप्रैल, 1985 को अपना पदभार ग्रहण किया था । तारीख 30 जनवरी, 1986 के पत्र द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 1985 से उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया था । तारीख 31 जुलाई, 1987 को राज्य सरकार द्वारा याची को सेवांत पेंशन का लाभ देने का मामला अस्वीकार कर दिया गया था । निदेशक, स्वास्थ्य सेवा, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 28 दिसंबर, 1988 को सचिव (स्वास्थ्य), हिमाचल प्रदेश सरकार को याची के हक़ में सिफ़ारिश की गई थी । निदेशक, स्वास्थ्य सेवा के अनुसार चूंकि याची ने 4 वर्षों से अधिक की सेवा की थी इसलिए वह सेवांत लाभ प्राप्त करने का हकदार है । तथापि,

तथ्यत: याचियों द्वारा दिए गए अभ्यावेदनों को तारीख 18 मई, 1989 तथा 13 मई, 1993 को अस्वीकार कर दिया गया था । अपर सचिव (स्वास्थ्य), हिमाचल प्रदेश सरकार ने तारीख 16 अक्तूबर, 2001 को जारी किए गए पत्र उपाबंध ए-13 द्वारा, जो कि निदेशक, स्वास्थ्य सेवा को लिखा गया था, याची द्वारा उसके मूल विभाग अर्थात् स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग में की गई पूर्व सेवा को गणना में लेते हुए सत्यापित करने को कहा गया था । तारीख 18 दिसंबर, 2001 को याची ने एक अभ्यावेदन दिया था जिसमें उसने श्री सुशांत अवस्थी, चिकित्सा अधिकारी का उदाहरण दिया था कि उनकी भी नियुक्ति हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय में ही हुई थी और उनकी पूर्व सेवा को गणना में लिया गया था । रजिस्ट्रार ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सोलन को तारीख 20 फरवरी, 2002 को एक पत्र उपाबंध ए-17 द्वारा यह सूचित किया था कि स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग में की गई सेवाएं विश्वविद्यालय द्वारा केवल राज्य सरकार की ओर से सेवांत पेंशन दायित्व का भुगतान करने में गणना में ली जाएगी । सचिव (स्वास्थ्य) ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सोलन, जिला सोलन को एक सूचना भेजी थी, जिसकी एक प्रति रजिस्ट्रार, वाई. एस. परमार उद्यान और वन विश्वविद्यालय, नौनी को भेजी गई थी जिसके द्वारा यह सूचित किया गया था कि इस पर पहले ही तारीख 31 जुलाई, 1987, 18 मई, 1989 और 13 मई, 1993 को विनिश्चय किया जा चुका है ।

2. याची के विद्वान् काउंसेल श्री दिलीप शर्मा ने जोशीले अन्दाज में यह बहस की कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय याची द्वारा प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय में नियुक्ति के पूर्व अर्थात् 30 अप्रैल, 1985 तक, मूल विभाग में की गई याची की सेवाओं को गणना में लेने के लिए आबद्ध है ।

3. विद्वान् वरिष्ठ अपर महाधिवक्ता श्री आर. के. शर्मा ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि याची का मामला पहले ही अस्वीकार किया जा चुका है और वह सी. सी. एस. (पेंशन) नियम, 1972 के अन्तर्गत नहीं आता है । उन्होंने यह भी दलील दी कि याची द्वारा की गई सेवा गणना में नहीं ली जा सकती क्योंकि वह तदर्थ सेवा थी ।

4. प्रत्यर्थी सं. 2 के विद्वान् काउंसेल श्री ओंकार जयरथ ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि याची द्वारा मूल विभाग में की गई सेवाएं राज्य सरकार द्वारा दिए जाने वाले सेवांत सेवानिवृत्ति लाभों के प्रयोजनों के लिए गणना में ली जा सकती है । उन्होंने तारीख 3 मार्च, 1997 को जारी किए गए उपाबंध आर-8 का भी अवलंब लिया है ।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिवचनों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

6. याची को तारीख 21 दिसंबर, 1970 को सिविल सहायक सर्जन ग्रेड-1 (जी.) के रूप में नियुक्त किया गया था । उसने उसी हैसियत में लगातार तारीख 29 अप्रैल, 1985 तक कार्य किया था । उसने 14 वर्षों से अधिक की सेवा की है । विद्वान् वरिष्ठ अपर महाधिवक्ता श्री आर. के. शर्मा द्वारा दिए गए उत्तर और की गई बहस के अनुसार याची की नियुक्ति अस्थायी आधार पर की गई थी, न कि तदर्थ आधार पर । उसे तारीख 23 अक्तूबर, 1987 को तारीख 1 जनवरी, 1981 से दक्षतारोध पार करने की अनुमति दी गई थी । इसके पश्चात् पुन: तारीख 22 फरवरी, 1985 से उसे दक्षतारोध पार करने की अनुमति दी गई थी । तारीख 30 जनवरी, 1986 के पत्र द्वारा उसका त्यागपत्र तारीख 30 अप्रैल, 1985 से स्वीकार किया गया था । तारीख 30 जुलाई, 1987 को प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय द्वारा उसे नियमित किया गया था । तारीख 31 अक्तूबर, 2001 को वह सेवानिवृत्त हो गया है । याची को तारीख 30 अप्रैल, 1985 से विश्वविद्यालय में पद ग्रहण करने तक अस्थायी आधार पर सिविल सहायक सर्जन ग्रेड-1 के पद पर अधिष्ठायी रूप से नियुक्त किया गया था । तारीख 28 दिसंबर, 1988 के उपाबंध ए-10 से यह स्पष्ट होता है कि निदेशक, स्वास्थ्य सेवा, हिमाचल प्रदेश द्वारा याची के मामले की सिफारिश की गई थी ।

7. सी. सी. एस. (पेंशन) नियम, 1972 के नियम 13 में उल्लिखित भाषा से यह स्पष्ट होता है कि किसी भी सरकारी सेवक की अर्हक सेवा उस तारीख से आरंभ होगी जिस तारीख को उसने किसी पद का पदभार ग्रहण किया हो और जिस पर उसकी प्रथम नियुक्ति हुई थी चाहे वह अधिष्ठायी रूप से हो या स्थापन्न हो या अस्थायी हैसियत में हुई हो । तारीख 21 दिसंबर, 1970 से तारीख 31 अक्तूबर, 2001 तक की गई याची की सेवा में कोई व्यवधान नहीं है ।

8. जहां तक श्री सुशांत अवस्थी के मामले का संबंध है, उसका मामला भिन्न है । उसे तारीख 19 सितंबर, 1968 को तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था और तारीख 7 दिसंबर, 1972 को नियमित कर दिया गया था । याची के विद्वान् काउंसेल श्री दिलीप शर्मा ने न्यायालय का ध्यान उपाबंध आर-8 की ओर आकृष्ट किया है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय में पेंशन स्कीम लागू करने का विनिश्चय है । उस स्कीम का पैरा सं. 1.11(i) निम्नवत है :–

"ऐसा विद्यमान कर्मचारी जिसने केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या केन्द्रीय/राज्य विधि के अधीन स्थापित स्वायत्त निकाय में सेवा की है और जिसे जनहित में डा. वाई. एस. परमार उद्यान और वन विज्ञान विश्वविद्यालय में आमेलित कर लिया है या जो विश्वविद्यालय की सेवा में केन्द्रीय/राज्य सरकार/स्वायत्त निकाय की सेवा से आया है, अपनी पूर्व में की गई सेवा की गणना पेंशन के लिए करवा सकता है, यदि वह ऐसी सरकार/स्वायत्त निकाय में की गई सेवा के सेवांत सेवानिवृत्ति के संबंध में प्राप्त किए गए लाभों के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ, इन लाभों को प्राप्त करने की तारीख से जमा किए जाने की तारीख तक दस प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से चक्रवृद्धि ब्याज सहित राशि का विश्वविद्यालय को प्रतिदाय करेगा ।"

9. नियम के साथ संलग्न किए गए टिप्पण से यह दर्शित होता है कि ये उपबंध तारीख 1 जनवरी, 1986 को सेवारत कर्मचारियों पर उनके आमेलन की तारीख पर ध्यान दिए बिना लागू होंगे । पैरा सं. 1.11(i) को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय ने कर्मचारियों द्वारा विश्वविद्यालय की सेवा में ग्रहण करने से पूर्व की गई पूर्व सेवाओं को गणना में लेने का विनिश्चय कर लिया था यदि पदधारी राज्य सरकार से प्राप्त सेवांत सेवानिवृत्ति लाभों के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ, ऐसे लाभों को प्राप्त करने की तारीख से विश्वविद्यालय में जमा करने की तारीख तक राशि पर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से चक्रवृद्धि ब्याज के साथ जमा कर देता है । अतः याची का मामला तारीख 3 मार्च, 1997 के उपाबंध आर-8 के अधीन आता है, क्योंकि उसने 14 वर्षों तक राज्य सरकार के अधीन सेवा की है और उसके पश्चात् उसने आरंभिक रूप से हिमाचल प्रदेश कृषि विश्व विद्यालय, पालमपुर में जी. डी. ओ. I के रूप में कार्यभार संभाला था और तदुपरांत वह तारीख 30 अप्रैल, 1985 से प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के सृजन के पश्चात् प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय का कर्मचारी बन गया था । यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी राज्य सरकार द्वारा याची को कोई भी सेवांत पेंशन नहीं दी गई है और उसका मामला तारीख 31 जुलाई, 1989, 18 मई, 1989, 13 मई, 1993 और 31 दिसंबर, 2002 को बार-बार अस्वीकार किया गया था । अत: राज्य द्वारा उसे कुछ भी संदाय न किए जाने के कारण याची द्वारा उसके द्वारा सेवानिवृत्ति संबंधी सेवांत लाभों का प्रतिदाय करने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता ।

10. तद्नुसार याचिका मंजूर की जाती है । तारीख 31 जुलाई, 1987 का उपाबंध ए-9, तारीख 28 दिसंबर, 1988 का उपाबंध ए-10, तारीख 18 मई, 1989 का उपाबंध ए-11 और तारीख 31 दिसंबर, 2002 का उपाबंध ए-18 अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह तारीख 21 दिसंबर, 1970 से 30 अप्रैल, 1985 तक याची द्वारा सिविल सहायक सर्जन ग्रेड-1 के रूप में की गई पूर्व सेवा को पेंशन संबंधी/सेवानिवृत्ति संबंधी लाभों की गणना करने के प्रयोजन से जोड़े । याची द्वारा इस निर्णय की सत्यापित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तारीख से बारह सप्ताह की अवधि के भीतर उसकी सेवा की गणना करते हुए याची को भुगतान किया जाए । लंबित आवेदनों का, यदि कोई हों, भी निपटान किया गया समझा जाएगा । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

भट./मह.

(2014) 1 सि. नि. प. 138 **हिमाचल प्रदेश**

स्वर्ण चौधरी

बनाम

नगर निगम, शिमला

तारीख 30 अगस्त, 2011

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा

हिमाचल प्रदेश नगर निगम अधिनियम, 1994 – धारा 116 और 154 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227] – अप्राधिकृत निर्माण – निगम की ऐसे निर्माण को गिराने या हटाने की शक्ति – निचले न्यायालयों द्वारा स्थल की जांच न कराकर केवल फोटोग्राफ़ के आधार पर निष्कर्ष निकालना – ऐसा निष्कर्ष कायम नहीं रखा जा सकता – सही निष्कर्ष निकालने के लिए स्थल की जांच के लिए जांच अधिकारी को नियुक्त करना और उसकी रिपोर्ट के आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित होगा ।

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह याचिका तारीख 2 अप्रैल, 2011 को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक

न्यायालय) शिमला द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध फाइल की है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथापि, याची ने केवल छह फोटोग्राफों को प्रस्तुत करने के लिए ही अवसर चाहा था और उसने ये दस्तावेज विद्वान् आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किए थे और आयुक्त ने यह मत व्यक्त किया था कि वे विद्यमान परिसर के नहीं हैं तथा यह भी मत व्यक्त किया कि जो फोटोग्राफ पेश किए गए हैं उनसे यह दर्शित होता है कि आर. सी. सी. स्लैब पर दो पानी की टंकियां रखी हुई हैं जिनसे यह साबित नहीं होता कि यह निर्माण पुराना है । विद्वान् आयुक्त ने अपना मत फोटोग्राफ को प्रथमदृष्ट्या देखने के पश्चात् व्यक्त किया था और यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि ये विद्यमान भवन के नहीं हैं क्योंकि नगर निगम द्वारा कोई खंडन साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । बल्कि उसने मुख्यतया यह आधार दिया है कि ये विद्यमान परिसर के नहीं हैं । तथापि, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने उपरोक्त वर्णित अपील का निपटान करते हुए मात्र यह मत व्यक्त किया कि वस्तुत: इन फोटोग्राफों को देखने मात्र से यह प्रतीत होता है कि शौचालय का निर्माण हाल ही में किया गया है और यह पुराना नहीं है । न्यायालय का यह मत है कि दोनों निचले न्यायालयों ने प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही नहीं की क्योंकि किसी अन्य साक्ष्य के बिना केवल फोटोग्राफों को देखकर आयुक्त द्वारा यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि ये परिसर से संबंधित नहीं थे जब तक कि इसे इस प्रकार साबित नहीं किया जाता । अत: आयुक्त द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को किसी भी रूप में सही नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने मंजूर नक्शे का निर्देश करते हुए या याची के कब्जे की किसी अन्य सामग्री जिसे वह पेश कर सकता था, के आधार पर विस्तृत आदेश पारित नहीं किया और इसके लिए उसने कारण नहीं दिए अपितु उसने आक्षेपित आदेश में इन तथ्यों पर विचार किए बिना और आदेश पारित करने के लिए कोई विस्तृत आधार का उल्लेख किए बिना तोड़ने का आदेश पारित किया जो कि न्यायालय के मतानुसार एक तर्कसंगत आदेश नहीं है । तथापि, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने केवल फोटोग्राफों को देखकर ही यह मत व्यक्त किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि शौचालय का निर्माण हाल में ही किया गया है और यह पुराना नहीं है । न्यायालय केवल फोटोग्राफों को देखकर किसी विशेषज्ञ जैसी उपधारणा नहीं कर सकता और न्यायालय के मतानुसार इस संबंध में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश का निष्कर्ष सही नहीं है । चर्चा के आधार

पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् आयुक्त ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए तर्कसंगत आदेश पारित नहीं किया और विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश भी सही परिप्रेक्ष में इस तथ्य की विवेचना करने में असफल रहा । न्यायालय का यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति करना एक अच्छा विकल्प था, जो कि मौके पर जाकर दोनों पक्षकारों की उपस्थिति में निरीक्षण करता और मौके पर विद्यमान ढांचे के निर्माण की बाबत संभावित वर्ष बताता । याची को कोई अन्य साक्ष्य, जिसमें स्वीकृत नक्शा भी है, यदि कोई हो, देने का कोई और अवसर नहीं दिया जा सका था क्योंकि साक्ष्य देने के लिए एक ही अवसर की मांग की गई थी, जिसमें कि फोटोग्राफों को प्रस्तुत किया गया था और इस बारे में इन्हीं पर विचार किया गया था कि क्या इनसे यह तथ्य साबित हुआ है या नहीं कि ढांचा नया था या पुराना । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा विद्वान् आयुक्त द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की गई है, अपास्त किया जाता है और परिणामत: विद्वान् आयुक्त का आदेश भी अपास्त किया जाता है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 158.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सत्यन वैद्य, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री श्रवण डोगरा

केविएटकर्ता की ओर से श्री दीपक भसीन, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा – याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह याचिका तारीख 2 अप्रैल, 2011 को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय) शिमला द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध फाइल की है । उक्त निर्णय हिमाचल प्रदेश नगर निगम अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 253 के अधीन फाइल की गई अपील में तारीख 18 दिसंबर, 2010 को पारित किया गया था । अपील आयुक्त, नगर निगम, शिमला द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध फाइल की गई थी । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने आयुक्त, नगर निगम, शिमला द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की पुष्टि करते हुए याची द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया था ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा नगर निगम, शिमला को, की गई शिकायत के आधार पर याची को अधिनियम की धारा 253 के अधीन यह सूचना जारी की गई थी कि कनिष्ठ अभियंता द्वारा स्थल का निरीक्षण करने पर यह पाया गया है कि आपने शिमला, प्लानिंग एरिया के केन्द्रीय भाग में 1.32 x 1.54 = 2.03 वर्ग मीटर क्षेत्र में अप्राधिकृत रूप से सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना एक शौचालय का निर्माण कर लिया है । याची से इस बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया था कि अप्राधिकृत रूप से निर्मित किए गए शौचालय को क्यों न गिरा दिया जाए । उसमें यह भी वर्णित किया गया था कि यदि याची दी गई अवधि के भीतर उत्तर फाइल नहीं करता है तो उसे कोई और अवसर दिए बिना शौचालय तोड़ने का आदेश पारित किया जाएगा ।

3. याची ने तारीख 29 मई, 2010 को उत्तर फाइल किया और निम्नलिखित अभिवचन किया :–

> "यह भी निवेदन किया जाता है कि दीवार पर केवल टाइलें लगाकर शौचालय का आंतरिक नवीकरण किया गया था और मेरे द्वारा कुछ भी अतिरिक्त या नया निर्माण नहीं किया गया है । शौचालय के ऊपर रखी गई पानी की टंकी क्षतिग्रस्त हो गई थी जिसे केवल बदला गया है । तारीख 7 मई, 2010 की सूचना सं. एम. सी. एस./ए. पी./10-2221 मुझे कभी भी प्राप्त नहीं हुई है और न ही मैंने अप्राधिकृत रूप से शौचालय का निर्माण किया है । केवल दीवार पर टाइलें लगाकर आंतरिक नवीकरण किया गया है जिसके लिए सक्षम प्राधिकारी की अनुमति की आवश्यकता नहीं है । सूचना गलत है और उसे स्थल की वास्तविक स्थिति की जांच किए बिना तथा प्रत्यर्थी को उत्तर देने का अवसर दिए बिना जारी किया गया है ।"

4. उसके पश्चात् याची को आयुक्त, नगर निगम, शिमला के समक्ष उपस्थित होने के लिए तारीख 2 अगस्त, 2010 को एक अन्य सूचना उपाबंध पी-3 जारी की गई थी ।

5. आयुक्त ने यह पाया कि तारीख 4 सितंबर, 2010 को याची (उसके समक्ष के प्रत्यर्थी) के काउंसेल ने अतिरिक्त साक्ष्य फाइल करने के लिए समय मांगा । उसके पश्चात् तारीख 23 अक्तूबर, 2010 को अतिरिक्त साक्ष्य के लिए पुन: समय देने की प्रार्थना की गई । अगली तारीख अर्थात् 18 दिसंबर, 2010 को आयुक्त, नगर निगम, शिमला ने

निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "मामले में आवाज लगाई गई । नगर निगम, शिमला की ओर से ए. पी., ए. ई. और जे. ई. तथा प्रत्यर्थी के काउंसेल श्री सत्यन वैद्य की ओर से श्री गौरव शर्मा उपस्थित हुए । शिकायतकर्ता श्री स्वर्ण चौधरी और श्री आदेश जैन भी वैयक्तिक रूप से उपस्थित हुए । प्रत्यर्थी को अतिरिक्त साक्ष्य फाइल करने के लिए समय दिया गया । प्रत्यर्थी के काउंसेल ने छह फोटोग्राफ फाइल किए हैं जो कि विद्यमान भवन के नहीं हैं । तथापि, एक फोटोग्राफ में आर. सी. सी. स्लैब पर दो पानी की टंकियां रखी हुई दिखाई दे रही हैं, इससे भी यह साबित नहीं होता है कि यह पुराना ढांचा था । तथापि, कार्यपालक इंजीनियर की रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि शौचालय का निर्माण अप्राधिकृत रूप से किया गया है । अत: मैं प्रत्यर्थी को आदेश देता हूं कि वह आज से एक मास की अवधि के भीतर अप्राधिकृत रूप से निर्मित 1.32 x 1.54 = 2.03 वर्ग मीटर माप के शौचालय को तोड़ दे, ऐसा न करने पर इसे ए. पी. द्वारा प्रत्यर्थी की जोखिम, लागत और जिम्मेदारी पर तोड़ दिया जाएगा । मामला तारीख 26 फरवरी, 2010 के लिए नियत किया जाता है ।"

6. आयुक्त नगर निगम द्वारा पारित उक्त आदेश से व्यथित होकर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील फाइल की गई थी और मामला विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक न्यायालय), शिमला द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2011 के आक्षेपित निर्णय द्वारा विनिश्चित किया गया था, जिसे इस याचिका में आक्षेपित किया गया है ।

7. प्रत्यर्थी को याचिका की सूचना जारी की गई थी । इस दौरान एक व्यक्ति द्वारा एक केविएट याचिका फाइल की गई थी ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेख का गहराई से परिशीलन किया ।

9. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् आयुक्त ने आदेश पारित करते समय मात्र यह मत व्यक्त किया है कि छह फोटोग्राफ फाइल किए गए थे, जो विद्यमान परिसर से संबंधित नहीं थे । एक फोटोग्राफ से यह उपदर्शित होता है कि आर. सी. सी. स्लैब के ऊपर दो पानी की टंकियां रखी हुई हैं, जिनसे यह साबित नहीं होता है कि यह पुराना ढांचा है । आक्षेपित आदेश को पारित करते समय विद्वान् आयुक्त ने

इन दोनों आधारों पर विचार किया था । उसने यह भी मत व्यक्त किया कि सहायक अभियंता की रिपोर्ट से यह स्पष्टत: उपदर्शित होता है कि शौचालय का निर्माण अप्राधिकृत रूप से किया गया था और इसलिए आयुक्त ने ऊपर निर्दिष्ट शौचालय गिराने का आदेश पारित किया ।

10. विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश के निर्णय का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उसने यह मत व्यक्त किया कि याची ने साक्ष्य में छह फोटोग्राफों के अतिरिक्त अन्य कोई साक्ष्य पेश नहीं किया था और विद्वान् अपील न्यायालय ने इन फोटोग्राफों के संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "अपीलार्थी ने तारीख 4 सितंबर, 2010 को आयुक्त के समक्ष अपने काउंसेल द्वारा सम्यक्त: प्रतिनिधित्व किया था और उसने इस आशय का साक्ष्य देने के लिए समय चाहा था कि यह शौचालय कई वर्ष पूर्व निर्मित किया गया था । तारीख 23 नवंबर, 2010 को अतिरिक्त साक्ष्य के लिए पुन: अवसर की मांग की गई थी और मामला तारीख 18 दिसंबर, 2010 तक अपीलार्थी के साक्ष्य के लिए स्थगित कर दिया गया था । तथापि, उसने ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जिससे उसके स्वीकृत भवन के नक्शे के अनुसार यह स्पष्ट हो सके कि उक्त शौचालय पुराना था और उसका निर्माण नगर निगम, शिमला की मंजूरी से किया गया था । उसने उक्त शौचालय के मात्र छह फोटोग्राफ फाइल किए हैं जो कि आयुक्त की फाइल के अभिलेख पर हैं । वास्तव में फोटोग्राफों को देखने पर यह प्रतीत होता है कि शौचालय का निर्माण हाल में ही किया गया था और यह पुराना नहीं है जैसीकि अपीलार्थी द्वारा दलील दी गई है । अत: आयुक्त द्वारा उसे उसके विरुद्ध किए गए अभिकथनों का खंडन करने के लिए अवसर दिया गया था ।"

11. विद्वान् अपील न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी ने नगर निगम, शिमला की मंजूरी का कोई आदेश फाइल नहीं किया है जिससे यह साबित हो सके कि शौचालय का निर्माण सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी प्राप्त करने के पश्चात् किया गया था । अत: विद्वान् आयुक्त ने शौचालय तोड़ने का आदेश ठीक ही पारित किया है । मेरे मतानुसार मामले में यही मूल प्रश्न है । याची नगर निगम की मंजूरी का प्लान प्रस्तुत करके यह तथ्य साबित कर सकता था कि उसके द्वारा जिस

शौचालय का निर्माण आरंभ किया गया था वह पुराना था । याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची द्वारा संपत्ति फ्लैट के रूप में 30 वर्ष पहले क्रय की गई थी जिसके विक्रय-विलेख की प्रति अभिलेख पर नहीं है । यदि उसने यह संपत्ति क्रय की थी तो उसे मंजूर किया गया नक्शा देखना चाहिए था और यदि फ्लैट क्रय किया गया है तो उसमें शौचालय के, यदि कोई हो, निर्देश सहित चाहे वह उस समय याची द्वारा बनाया गया हो या पूर्व-स्वामी द्वारा, संपत्ति का विवरण दिया जाना चाहिए था । ये ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं जो कि याची द्वारा प्रस्तुत नहीं किए गए हैं और इसलिए उसके द्वारा आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों पर ही विचार किया गया था । यद्यपि वह इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि ये दस्तावेज प्रश्नगत विवाद का अवधारण करने के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज थे ।

12. तथापि, याची ने केवल छह फोटोग्राफों को प्रस्तुत करने के लिए ही अवसर चाहा था और उसने ये दस्तावेज विद्वान् आयुक्त के समक्ष प्रस्तुत किए थे और आयुक्त ने यह मत व्यक्त किया था कि वे विद्यमान परिसर के नहीं हैं तथा यह भी मत व्यक्त किया कि जो फोटोग्राफ पेश किए गए हैं उनसे यह दर्शित होता है कि आर. सी. सी. स्लैब पर दो पानी की टंकियां रखी हुई हैं जिनसे यह साबित नहीं होता कि यह निर्माण पुराना है । विद्वान् आयुक्त ने अपना मत फोटोग्राफ को प्रथमदृष्ट्या देखने के पश्चात् व्यक्त किया था और यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि ये विद्यमान भवन के नहीं हैं क्योंकि नगर निगम द्वारा कोई खंडन साक्ष्य पेश नहीं किया गया था । बल्कि उसने मुख्यतया यह आधार दिया है कि ये विद्यमान परिसर के नहीं हैं । तथापि, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने उपरोक्त वर्णित अपील का निपटान करते हुए मात्र यह मत व्यक्त किया कि वस्तुत: इन फोटोग्राफों को देखने मात्र से यह प्रतीत होता है कि शौचालय का निर्माण हाल ही में किया गया है और यह पुराना नहीं है । मेरा यह मत है कि दोनों निचले न्यायालयों ने प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही नहीं की क्योंकि किसी अन्य साक्ष्य के बिना केवल फोटोग्राफों को देखकर आयुक्त द्वारा यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि ये परिसर से संबंधित नहीं थे जब तक कि इसे इस प्रकार साबित नहीं किया जाता । अत: आयुक्त द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को किसी भी रूप में सही नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसने मंजूर नक्शे का निर्देश करते हुए या याची के कब्जे की किसी अन्य सामग्री जिसे वह पेश कर सकता था, के

आधार पर विस्तृत आदेश पारित नहीं किया और इसके लिए उसने कारण नहीं दिए अपितु उसने आक्षेपित आदेश में इन तथ्यों पर विचार किए बिना और आदेश पारित करने के लिए कोई विस्तृत आधार का उल्लेख किए बिना तोड़ने का आदेश पारित किया जो कि मेरे मतानुसार एक तर्कसंगत आदेश नहीं है ।

13. तथापि, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने केवल फोटोग्राफों को देखकर ही यह मत व्यक्त किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि शौचालय का निर्माण हाल में ही किया गया है और यह पुराना नहीं है । न्यायालय केवल फोटोग्राफों को देखकर किसी विशेषज्ञ जैसी उपधारणा नहीं कर सकता और मेरे मतानुसार कि इस संबंध में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश का निष्कर्ष सही नहीं है ।

14. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विद्वान् आयुक्त ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए एक तर्कसंगत आदेश पारित नहीं किया और विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश भी सही परिप्रेक्ष में इस तथ्य की विवेचना करने में असफल रहा । मेरा यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति करना एक अच्छा विकल्प था, जो कि मौके पर जाकर दोनों पक्षकारों की उपस्थिति में निरीक्षण करता और मौके पर विद्यमान ढांचे के निर्माण की बाबत संभावित वर्ष बताता । याची को कोई अन्य साक्ष्य, जिसमें स्वीकृत नक्शा भी है, यदि कोई हो, देने का कोई और अवसर नहीं दिया जा सका था क्योंकि साक्ष्य देने के लिए एक ही अवसर की मांग की गई थी, जिसमें कि फोटोग्राफों को प्रस्तुत किया गया था और इस बारे में इन्हीं पर विचार किया गया था कि क्या इनसे यह तथ्य साबित हुआ या नहीं कि ढांचा नया था या पुराना ।

15. विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा विद्वान् आयुक्त द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की गई है, अपास्त किया जाता है और परिणामत: विद्वान् आयुक्त का आदेश भी अपास्त किया जाता है ।

16. आयुक्त, नगर निगम, शिमला एक विशेषज्ञ की नियुक्ति करेगा जो कि सामग्री और दीवारों आदि का परीक्षण करके भवन के निर्माण के वर्ष का अवधारण करेगा और इस कार्य के लिए अधिशासी अभियंता की या उससे ऊपर की श्रेणी के कार्यरत या सेवानिवृत्त व्यक्ति को आयुक्त द्वारा

स्थानीय आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जाएगा और विद्वान् आयुक्त द्वारा स्थानीय आयुक्त का खर्च जो विद्वान् आयुक्त द्वारा अवधारित किया जाएगा, याची द्वारा वहन किया जाएगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति करने में विद्वान् आयुक्त इस प्रश्न पर विचार करेगा कि अच्छे रिकार्ड और अच्छी ख्याति वाले व्यक्ति अधिमानत: दोनों पक्षकारों से अपरिचित व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाए, और ऐसा चयन करने में वह दोनों पक्षकारों की सहमति से स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए स्वयं अपने विवेक का प्रयोग करेगा । पक्षकार इस प्रयोजन के लिए सेवानिवृत्त और सेवारत अति निष्ठावान व्यक्ति का नाम प्रस्तावित कर सकेंगे और विद्वान् आयुक्त ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने में अपने विवेक का प्रयोग करेगा तथा उससे पक्षकारों की उपस्थिति में मौके पर जाकर भवन का निरीक्षण करने तथा तद्नुसार रिपोर्ट देने की अपेक्षा करेगा । विद्वान् आयुक्त द्वारा, स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के पश्चात् यथासंभव एक मास की अवधि के भीतर स्थानीय आयुक्त अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । आयुक्त तद्नुसार अपील की सुनवाई करेगा और उक्त रिपोर्ट पर आपत्तियां आमंत्रित नहीं की जाएंगी तथा पक्षकार केवल उक्त रिपोर्ट पर अपने सुझाव दे सकेंगे । विद्वान् आयुक्त द्वारा नए सिरे से मामले का विधि के अनुसार विनिश्चय किया जाएगा और वह तद्नुसार समुचित आदेश पारित करेगा ।

17. पक्षकार आयुक्त, नगर निगम, शिमला के समक्ष तारीख 12 सितंबर, 2011 को उपस्थित होंगे, जो विधि के अनुसार मामले में अगली सुनवाई और कार्यवाही की तारीख नियत करेगा ।

18. उपरोक्त निबंधनों के अधीन याचिका मंजूर की जाती है तथा लंबित प्रकीर्ण आवेदनों का भी, यदि कोई हों, निपटान किया जाता है । 2011 की केविएट याचिका सं. 343 का भी निपटान किया जाता है । अंतरिम आदेश रद्द किया जाता है । न्यायालय में मंगाया गया अभिलेख वापस किया जाए ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

भट./मह.

जीवन सिंह और अन्य

बनाम

ब्रह्म दास और अन्य

तारीख 20 अप्रैल, 2012

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और 227 [सपठित हिमाचल प्रदेश जोत (चकबंदी और खण्डकरण का निवारण) अधिनियम, 1971 की धारा 54] – रिट – राज्य द्वारा भूमि का आबंटन – आबंटन नियमानुसार होना – आक्षेप – यदि राज्य द्वारा किसी भूमि का आबंटन नियमानुसार किया जाता है तो इस पर आक्षेप इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि उक्त प्रश्नगत भूमि का प्रयोग मंदिर में आने-जाने के लिए किया जाता है ।

वर्तमान मामले में, मामले के तथ्य जो विवादित नहीं हैं संक्षिप्ततः यह है कि खसरा सं. 228 (पुराना) माप 0-6 मरला में समाविष्ट भूमि, जो गैर-मुमकिन आबादी के रूप में प्रविष्ट है, को निम्नलिखित कब्जा कालम में प्रविष्ट किया गया था । कुल हिस्से 25 थे और याची जीवन सिंह आदि 22 हिस्सों के ऊपर कब्जा किए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 कब्जा विषयक कालम में तीन हिस्से के ऊपर कब्जा किया था । चकबन्दी के दौरान यह भूमि अनन्य रूप से प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित की गई थी और वर्ष 2000-2001 के लिए जमाबन्दी (उपाबंध पी-2) से यह दर्शित होता है कि ब्रह्म दास इस खसरा सं. 252 (नया) माप 0-6 मरला के ऊपर कब्जे सहित अनन्य स्वामी के रूप में प्रविष्ट हुआ था जो गैर-मुमकिन आबादी के रूप में प्रविष्ट किया गया था । याची सं. 1 जीवन सिंह ने चकबन्दी अधिकारी के समक्ष आक्षेप फाइल करते हुए यह अभिकथन किया कि खसरा सं. 228 चकबन्दी लागू होने से पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा संयुक्ततः धारित थी और यह गलत तौर पर प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित हो गई थी । यह भी अभिकथन किया कि इस भूमि के ऊपर खुली जगह (खलवारा) और बाबा पीर का मंदिर है जो दोनों पक्षकारों द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1 सम्मिलित है, प्रयोग किया जाता था । यह भी अभिकथन किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 इस भूमि में 0-1 मरला तक की भूमि का शेयरधारक था और इस भूमि का सही धारकों के साथ स्थायी रूप से इस खलवारा का प्रयोग करता था

क्योंकि यह खलवारा और मंदिर 0-6 मरला भूमि में समाविष्ट थी । यह भी अभिकथन किया गया कि इस मंदिर का प्रयोग दोनों पक्षकारों द्वारा सामान्य उद्देश्य के लिए लिया जाता था किन्तु चकबन्दी कर्मचारियों ने इस सामान्य उद्देश्य पर विचार नहीं किया । आक्षेप तारीख 18 फरवरी, 2002 को उपाबंध पी-3 के अनुसार फाइल किए गए थे । इन आक्षेपों का विनिश्चय, हिमाचल प्रदेश जोत (चकबंदी और खंडकरण का निवारण) अधिनियम, 1971, (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 54 के अधीन फाइल पुनरीक्षण आवेदन में पारित तारीख 29 नवम्बर, 2002 के आदेश द्वारा किया गया था । चकबन्दी निदेशक ने इस पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा किया । इसके पश्चात्, चकबन्दी अधिकारी ने रिमांड आदेश पर विचार किया और उपाबंध पी-5 के अनुसार, सुनवाई की तारीख 28 जून, 2003 और तारीख 18 जुलाई, 2003 को नियत की और घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि यह प्रत्यर्थी का मकान है और खसरा सं. 228 (पुराना)/252 (नया) में सीढ़ियों का कुछ भाग है । यह भी मत व्यक्त किया कि इस खसरा संख्या में मवेशी बांधे गए हैं और एक बाथरूम का भी निर्माण किया गया है और पूरा खसरा संख्या प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में है तथापि, यह मत व्यक्त किया कि इस खसरा सं. 228 (पुराना)/252 (नया) के कोने में 0-1 मरला भूमि में बाबा पीर का एक मंदिर है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए और इनमें सामंजस्य बनाए रखते हुए, यह प्रतीत होता है कि चकबंदी अधिकारी ने यह आदेश पारित किया था कि 0-1 मरला की इस भूमि के ऊपर बाबा पीर का मंदिर संयुक्ततः अस्तित्व में है । तद्नुसार, उन्होंने प्रत्यर्थी को भूमि आबंटित करने वाले शेष आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया । इस आदेश से व्यथित होकर आवेदकों ने अधिनियम की धारा 54 के अधीन एक पुनरीक्षण आवेदन (उपाबंध पी-6) फाइल किया, उक्त आवेदन में यह अभिवाक् किया कि विवादित भूमि से होकर लोग आते-जाते हैं और 5 मरला की इस भूमि के अलावा धार्मिक गतिविधियों के लिए इकट्ठे होने और उन्हें करने के लिए कोई अन्य जगह नहीं बची है । एक वैकल्पिक प्रार्थना यह भी की गई कि आवेदकों में से एक और उसकी पत्नी भी प्रत्यर्थी को खसरा संख्या 271 में से 5 मरला की अपनी भूमि देने को तैयार थे जो उस भूमि और प्रत्यर्थी के मकान से सटे थे जिसे वे अपने प्रतिकर और मंदिर की पवित्रता बनाए रखने के लिए दे रहे थे । इस प्रकार, यह अंतिम रूप से प्रार्थना की गई थी कि तारीख 28 जून, 2003 के आदेश को अपास्त कर दिया जाए तो और इसे बाबा पीर मंदिर के रूप में ज्ञात मंदिर के पक्ष में खसरा संख्या 252 में

से 5 मरला की भूमि अन्तरित करते हुए उपांतरित किया जाए और खसरा संख्या 271 में से 5 मरला की भूमि प्रत्यर्थी के पक्ष में अंतरित करने का आदेश पारित किया जाए । चकबंदी निदेशक ने तारीख 31 दिसम्बर, 2007 के आदेश (उपाबंध पी-7) द्वारा पुनरीक्षण आवेदन का विनिश्चय किया । चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश को कायम रखा गया और आवेदकों द्वारा फाइल पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया । उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचियों ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्पष्ट है कि याचियों की मुख्य शिकायत यह नहीं थी कि उन्हें खसरा सं. 228 में समाविष्ट भूमि में से भूमि आबंटित नहीं की गई है अपितु उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि यह एक मंदिर था और उक्त भूमि को प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित नहीं किया जा सकता था । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह अभिवाक् उद्भूत किया गया कि वहां मंदिर मौजूद है और इससे घटनास्थल पर शांति भंग हो सकती है, चकबन्दी निदेशक ने चकबन्दी अधिकारी को घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् तर्कों पर विचार करने के लिए सही तौर पर मामला वापस भेजा था । घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् उसने यह पाया कि 0-1 मरला भूमि ही मंदिर के कब्जे में थी न कि शेष भूमि जिसे प्रत्यर्थी सं. 1 को सही तौर पर आबंटित किया गया था । उक्त आदेश को अधिनियम की भावना के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है किन्तु मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और घटनास्थल पर किसी बाधा से बचने के लिए ही उक्त आदेश को पारित किया गया था । इसके अतिरिक्त, पूर्ववर्ती याचियों द्वारा यह प्रार्थना की गई थी कि उक्त भूमि पर मंदिर मौजूद था और शेष भूमि का भी प्रयोग मंदिर आने-जाने के लिए किया जाता था और उसे भी सामान्य प्रयोजन के लिए उक्त मंदिर को आबंटित किया जाना चाहिए । प्रश्नगत भूमि के बदले में खसरा संख्या 271 में से प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में वैकल्पिक आबंटन के लिए की गई प्रस्थापना के संबंध में, प्रश्नगत भूमि प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में पाई गई है जिस पर उसने मकान और सीढ़ियों का निर्माण किया है और वहां जानवरों को खूंटे से बांधने के लिए प्रयोग किया जाता है और अब इस प्रक्रम पर इस अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभिलेख से यह भी स्पष्ट नहीं है कि कहां खसरा सं. 271 स्थित है अथवा यह उस भूमि के साथ जुड़ा है जिसे 0-1 मरला भूमि पर बने मंदिर के कब्जे में पाया गया है । इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की यह

राय है कि उक्त आदेश को मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया है और इसे अधिनियम की भावना के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार उक्त आदेश किसी अवैधता से ग्रसित नहीं है जिसमें इस न्यायालय द्वारा रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया जाए । (पैरा 11, 12 और 13)

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2008-डी की सिविल रिट याचिका सं. 838.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से	सुश्री रीता गोस्वामी, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से	सर्वश्री एन. के. ठाकुर, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ रमेश शर्मा, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 की ओर से	श्री जे. एस. राणा, सहायक महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति वी. के. आहूजा – इस निर्णय द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचियों द्वारा फाइल रिट याचिका का निपटारा किया जाएगा जिसमें उन्होंने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की है :–

> ".....मौजा महेलता, जिला हमीरपुर (हि. प्र.) में खसरा सं. 228 (पुराना)/252 (नया) में समाविष्ट सम्पूर्ण 0-6 मरला भूमि को साधारण जनता द्वारा धार्मिक उपयोग के लिए बाबा पीर मंदिर काम्पलेक्स से दूर रखने और इसका स्वामित्व तथा रख-रखाव या तो संयुक्ततः याचियों और प्रत्यर्थी सं. 1 में या ग्राम पंचायत नन्धन, जिला हमीरपुर (हि. प्र.) या हिमाचल प्रदेश राज्य, जैसी भी स्थिति हो, में निहित करने का निर्देश दिया जाए ..... ।"

2. मामले के तथ्य जो विवादित नहीं हैं संक्षिप्ततः यह हैं कि खसरा सं. 228 (पुराना) माप 0-6 मरला में समाविष्ट भूमि, जो गैर-मुमकिन आबादी के रूप में प्रविष्ट है, को निम्नलिखित कब्जा कालम में प्रविष्ट किया गया था :–

> कुल हिस्से 25 थे और याची जीवन सिंह आदि 22 हिस्सों के

ऊपर कब्जा किए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 कब्जा विषयक कालम में तीन हिस्से के ऊपर कब्जा किया था ।

3. चकबन्दी के दौरान यह भूमि अनन्य रूप से प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित की गई थी और वर्ष 2000-2001 के लिए जमाबन्दी (उपाबंध पी-2) से यह दर्शित होता है कि ब्रह्म दास इस खसरा सं. 252 (नया) माप 0-6 मरला के ऊपर कब्जे सहित अनन्य स्वामी के रूप में प्रविष्ट हुआ था जो गैर-मुमकिन आबादी के रूप में प्रविष्ट किया गया था । याची सं. 1 जीवन सिंह ने चकबन्दी अधिकारी के समक्ष आक्षेप फाइल करते हुए यह अभिकथन किया कि खसरा सं. 228 चकबन्दी लागू होने से पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा संयुक्ततः धारित थी और यह गलत तौर पर प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित हो गई थी । यह भी अभिकथन किया कि इस भूमि के ऊपर खुली जगह (खलवारा) और बाबा पीर का मंदिर है जो दोनों पक्षकारों द्वारा, जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1 सम्मिलित है, प्रयोग किया जाता था । यह भी अभिकथन किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 इस भूमि में 0-1 मरला तक की भूमि का शेयरधारक था और इस भूमि का सही धारकों के साथ स्थायी रूप से इस खलवारा का प्रयोग करता था क्योंकि यह खलवारा और मंदिर 0-6 मरला भूमि में समाविष्ट थी । यह भी अभिकथन किया गया कि इस मंदिर का प्रयोग दोनों पक्षकारों द्वारा सामान्य उद्देश्य के लिए लिया जाता था किन्तु चकबन्दी कर्मचारियों ने इस सामान्य उद्देश्य पर विचार नहीं किया । आक्षेप तारीख 18 फरवरी, 2002 को उपाबंध पी-3 के अनुसार फाइल किए गए थे । इन आक्षेपों का विनिश्चय, हिमाचल प्रदेश जोत (चकबंदी और खंडकरण का निवारण) अधिनियम, 1971, (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 54 के अधीन फाइल पुनरीक्षण आवेदन में पारित तारीख 29 नवम्बर, 2002 के आदेश द्वारा किया गया था । चकबन्दी निदेशक ने इस पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा करते हुए उपाबंध पी-4 द्वारा निम्नलिखित मत व्यक्त किया :-

> "आज श्री जीवन सिंह, राजू **उर्फ** राजकुमार, दीनानाथ आवेदकगण तथा श्री ब्रह्म दास, प्रत्यर्थी की उपस्थिति में मामला सुनवाई के लिए लाया गया । मैंने दोनों पक्षकारों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया । आवेदक ने यह कथन किया कि घटनास्थल पर 'खलवारा' और 'बाबा पीर का मंदिर' है जिसे दोनों पक्षकारों को आबंटित किया जाना चाहिए जबकि प्रत्यर्थियों ने यह कथन किया कि घटनास्थल पर प्रत्यर्थी की आबादी है । अभिलेखों के

परिशीलन से यह दर्शित होता है कि खसरा सं. 228 का वर्गीकरण 'गैर-मुमकिन आबादी' के रूप में किया गया है किन्तु घटनास्थल पर तथ्यात्मक स्थिति को सुनिश्चित करने के लिए दोनों पक्षकारों से हटकर घटनास्थल को देखा जाना अपेक्षित है और इस बात पर भी जोर दिया कि घटनास्थल का निरीक्षण किया जाए । इस मत को ध्यान में रखते हुए मामले को चकबन्दी अधिकारी, हमीरपुर के पास इन निदेशों के साथ वापस भेजा जाता है कि घटनास्थल का निरीक्षण और आवश्यक पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् गुणागुणों पर मामले का विनिश्चय किया जाए ।"

4. इसके पश्चात्, चकबन्दी अधिकारी ने रिमांड आदेश पर विचार किया और उपाबंध पी-5 के अनुसार, सुनवाई की तारीख 28 जून, 2003 और तारीख 18 जुलाई, 2003 को नियत की और घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि यह प्रत्यर्थी का मकान है और खसरा सं. 228 (पुराना)/252 (नया) में सीढ़ियों का कुछ भाग है । यह भी मत व्यक्त किया कि इस खसरा संख्या में मवेशी बांधे गए हैं और एक बाथरूम का भी निर्माण किया गया है और पूरा खसरा संख्या प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में है तथापि, यह मत व्यक्त किया कि इस खसरा सं. 228 (पुराना)/252 (नया) के कोने में 0-1 मरला भूमि में बाबा पीर का एक मंदिर है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए और इनमें सामंजस्य बनाए रखते हुए, यह प्रतीत होता है कि चकबंदी अधिकारी ने यह आदेश पारित किया था कि 0-1 मरला की इस भूमि के ऊपर बाबा पीर का मंदिर संयुक्ततः अस्तित्व में है । तद्नुसार, उन्होंने प्रत्यर्थी को भूमि आबंटित करने वाले शेष आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया ।

5. इस आदेश से व्यथित होकर आवेदकों ने अधिनियम की धारा 54 के अधीन एक पुनरीक्षण आवेदन (उपाबंध पी-6) फाइल किया, उक्त आवेदन में यह अभिवाक् किया कि विवादित भूमि से होकर लोग आते-जाते हैं और 5 मरला की इस भूमि के अलावा धार्मिक गतिविधियों के लिए इकट्ठे होने और उन्हें करने के लिए कोई अन्य जगह नहीं बची है । एक वैकल्पिक प्रार्थना यह भी की गई कि आवेदकों में से एक और उसकी पत्नी भी प्रत्यर्थी को खसरा संख्या 271 में से 5 मरला की अपनी भूमि देने को तैयार थे जो उस भूमि और प्रत्यर्थी के मकान से सटे थे जिसे वे अपने प्रतिकर और मंदिर की पवित्रता बनाए रखने के लिए दे रहे थे । इस प्रकार, यह अंतिम रूप से प्रार्थना की गई थी कि तारीख 28 जून, 2003 के

आदेश को अपास्त कर दिया जाए तो और इसे बाबा पीर मंदिर के रूप में ज्ञात मंदिर के पक्ष में खसरा संख्या 252 में से 5 मरला की भूमि अन्तरित करते हुए उपांतरित किया जाए और खसरा संख्या 271 में से 5 मरला की भूमि प्रत्यर्थी के पक्ष में अंतरित करने का आदेश पारित किया जाए ।

6. चकबंदी निदेशक ने तारीख 31 दिसम्बर, 2007 के आदेश (उपाबंध पी-7) द्वारा पुनरीक्षण आवेदन का विनिश्चय किया । चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश को कायम रखा गया और आवेदकों द्वारा फाइल पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया ।

7. उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचियों ने उपर्युक्त सविस्तार रूप से उल्लिखित अनुतोषों का दावा करते हुए, वर्तमान रिट याचिका फाइल की ।

8. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

9. याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह निवेदन किया गया कि भूमि पक्षकारों में संयुक्ततः प्रविष्ट थी और यह अनन्य रूप से प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित नहीं की जा सकी थी । यह भी निवेदन किया गया कि भूमि को गलत तौर पर अनन्य रूप से प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित किया गया है और चूंकि सटी हुई भूमि, जिसका एक भाग खाली था, उसका प्रयोग किया जाना अपेक्षित है क्योंकि लोग उससे होकर मंदिर आते-जाते हैं, पारित आदेश उपांतरित किया जाए और खसरा संख्या 271 में समाविष्ट 5 मरला की भूमि को अन्तरित करने के लिए याचियों की प्रस्थापना पर चकबन्दी प्राधिकारियों द्वारा विचार किया जाए । यह भी निवेदन किया गया कि चकबन्दी प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश खंडकरण के विरुद्ध है जो अधिनियम के अधीन प्रतिषिद्ध है और इस प्रकार, उक्त आदेश विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एन. के. ठाकुर ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है ।

11. उपर्युक्त चर्चा के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि याचियों की मुख्य शिकायत यह नहीं थी कि उन्हें खसरा सं. 228 में समाविष्ट भूमि में से भूमि आबंटित नहीं की गई है अपितु उनकी मुख्य शिकायत यह थी कि यह एक मंदिर था और उक्त भूमि को प्रत्यर्थी सं. 1 को आबंटित नहीं किया जा सकता था । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह अभिवाक् उद्भूत किया गया कि वहां मंदिर मौजूद है और इससे घटनास्थल पर शांति

भंग हो सकती है, चकबन्दी निदेशक ने चकबन्दी अधिकारी को घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् तर्कों पर विचार करने के लिए सही तौर पर मामला वापस भेजा था । घटनास्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् उसने यह पाया कि 0-1 मरला भूमि ही मंदिर के कब्जे में थी न कि शेष भूमि जिसे प्रत्यर्थी सं. 1 को सही तौर पर आबंटित किया गया था । उक्त आदेश को अधिनियम की भावना के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है किन्तु मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और घटनास्थल पर किसी बाधा से बचने के लिए ही उक्त आदेश को पारित किया गया था । इसके अतिरिक्त, पूर्ववर्ती याचियों द्वारा यह प्रार्थना की गई थी कि उक्त भूमि पर मंदिर मौजूद था और शेष भूमि का भी प्रयोग मंदिर आने-जाने के लिए किया जाता था और उसे भी सामान्य प्रयोजन के लिए उक्त मंदिर को आबंटित किया जाना चाहिए ।

12. प्रश्नगत भूमि के बदले में खसरा संख्या 271 में से प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में वैकल्पिक आबंटन के लिए की गई प्रस्थापना के संबंध में, प्रश्नगत भूमि प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में पाई गई है जिस पर उसने मकान और सीढ़ियों का निर्माण किया है और वहां जानवरों को खूंटे से बांधने के लिए प्रयोग किया जाता है और अब इस प्रक्रम पर इस अभिवाक् पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभिलेख से यह भी स्पष्ट नहीं है कि कहां खसरा सं. 271 स्थित है अथवा यह उस भूमि के साथ जुड़ा है जिसे 0-1 मरला भूमि पर बने मंदिर के कब्जे में पाया गया है ।

13. इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मेरी यह राय है कि उक्त आदेश को मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया है और इसे अधिनियम की भावना के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार उक्त आदेश किसी अवैधता से ग्रसित नहीं है जिसमें इस न्यायालय द्वारा रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया जाए ।

14. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, याचियों द्वारा फाइल याचिका में कोई गुणागुण नहीं है जिसे खारिज किया जाता है, इसके साथ ही लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, को भी खारिज किया जाता है । अन्तरिम आदेश, यदि कोई हो, भी बातिल हो जाएंगे ।

तद्नुसार, रिट याचिका खारिज की गई ।

क.

संसद् के अधिनियम

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007

(2007 का अधिनियम संख्यांक 56)

[29 दिसम्बर, 2007]

संविधान के अधीन गारंटीकृत और मान्यताप्राप्त माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों के भरणपोषण तथा कल्याण के लिए अधिक प्रभावी उपबंधों का और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के अठावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार, लागू होना और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है और यह भारत के बाहर भारत के नागरिकों को भी लागू होगा ।

(3) यह किसी राज्य में, उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "बालक" के अंतर्गत पुत्र, पुत्री, पौत्र और पौत्री हैं, किन्तु इसमें कोई अवयस्क सम्मिलित नहीं है ;

(ख) "भरणपोषण" में आहार, वस्त्र, निवास और चिकित्सीय परिचर्या और उपचार उपलब्ध कराना सम्मिलित है ;

(ग) "अवयस्क" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जिसके बारे में भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 (1875 का 9) के उपबंधों के

अधीन यह समझा जाता है कि उसने वयस्कता की आयु प्राप्त नहीं की है ;

(घ) "माता-पिता" से पिता या माता अभिप्रेत है, चाहे वह, यथास्थिति, जैविक, दत्तक या सौतेला पिता या सौतेली माता है, चाहे माता या पिता कोई वरिष्ठ नागरिक है या नहीं ;

(ङ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(च) "संपत्ति" से किसी प्रकार की संपत्ति अभिप्रेत है, चाहे वह जंगम या स्थावर, पैतृक या स्वयं अर्जित, मूर्त या अमूर्त हो और जिसमें ऐसी संपत्ति में अधिकार या हित सम्मिलित हैं ;

(छ) "नातेदार" से नि:संतान वरिष्ठ नागरिक का कोई विधिक वारिस अभिप्रेत है, जो अवयस्क नहीं है तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी संपत्ति उसके कब्जे में है या विरासत में प्राप्त करेगा ;

(ज) "वरिष्ठ नागरिक" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है, जो भारत का नागरिक है और जिसने साठ वर्ष या अधिक आयु प्राप्त कर ली है ;

(झ) किसी संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ञ) "अधिकरण" से धारा 7 के अधीन गठित भरणपोषण अधिकरण अभिप्रेत है ;

(ट) "कल्याण" से वरिष्ठ नागरिकों के लिए आवश्यक आहार, स्वास्थ्य देखरेख, आमोद-प्रमोद केन्द्रों और अन्य सुख-सुविधाओं की व्यवस्था करना अभिप्रेत है ।

3. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना** – इस अधिनियम के उपबंधों का, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के कारण प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में अंतर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभाव होगा ।

अध्याय 2

माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण

4. **माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरणपोषण** – (1) कोई वरिष्ठ नागरिक, जिसके अंतर्गत माता-पिता हैं, जो स्वयं के अर्जन से या उसके स्वामित्वाधीन संपत्ति में से स्वयं का भरणपोषण करने में असमर्थ है, :–

(i) माता-पिता या पितामह-पितामही की दशा में, अपने एक या अधिक बालकों के विरुद्ध, जो अवयस्क नहीं हैं ;

(ii) किसी नि:संतान वरिष्ठ नागरिक की दशा में, अपने ऐसे नातेदार के विरुद्ध, जो धारा 2 के खंड (छ) में निर्दिष्ट है,

धारा 5 के अधीन कोई आवेदन करने का हकदार होगा ।

(2) किसी वरिष्ठ नागरिक का भरणपोषण करने के लिए, यथास्थिति, बालक या नातेदार की बाध्यता ऐसे नागरिक की आवश्यकताओं तक विस्तारित होती है, जिससे कि वरिष्ठ नागरिक एक सामान्य जीवन व्यतीत कर सके ।

(3) अपने माता-पिता का भरणपोषण करने की बालक की बाध्यता, यथास्थिति, ऐसे माता-पिता अथवा पिता या माता या दोनों की आवश्यकता तक विस्तारित होती है, जिससे कि ऐसे माता-पिता, सामान्य जीवन व्यतीत कर सकें ।

(4) कोई व्यक्ति, जो किसी वरिष्ठ नागरिक का नातेदार है और जिसके पास पर्याप्त साधन हैं, ऐसे वरिष्ठ नागरिक का भरणपोषण करेगा, परन्तु यह तब जब कि ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति उसके कब्जे में है या वह ऐसे वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति को विरासत में प्राप्त करेगा :

परन्तु जहां किसी वरिष्ठ नागरिक की संपत्ति को एक से अधिक नातेदार विरासत में प्राप्त करने के हकदार हैं, वहां भरणपोषण, ऐसे नातेदारों द्वारा उस अनुपात में संदेय होगा, जिसमें वे उसकी संपत्ति को विरासत में प्राप्त करेंगे ।

5. **भरणपोषण के लिए आवेदन** – (1) धारा 4 के अधीन भरणपोषण के लिए कोई आवेदन, –

(क) यथास्थिति, किसी वरिष्ठ नागरिक या किसी माता-पिता द्वारा किया जा सकेगा ; या

(ख) यदि वह अशक्त है तो उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति या संगठन द्वारा किया जा सकेगा ; या

(ग) अधिकरण स्वप्रेरणा से संज्ञान ले सकेगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "संगठन" से सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई स्वैच्छिक संगम अभिप्रेत है ।

(2) अधिकरण, इस धारा के अधीन भरणपोषण के लिए मासिक भत्ते की बाबत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, ऐसे बालक या नातेदार को ऐसे वरिष्ठ नागरिक के जिसके अन्तर्गत माता-पिता भी हैं, अन्तरिम भरणपोषण के लिए मासिक भत्ता देने और उसका ऐसे वरिष्ठ नागरिक को, जिसके अंतर्गत माता-पिता भी हैं, संदाय करने का आदेश कर सकेगा, जो अधिकरण समय-समय पर निदेशित करे ।

(3) उपधारा (1) के अधीन भरणपोषण के लिए आवेदन की प्राप्ति पर, बालक या नातेदार को आवेदन की सूचना देने के पश्चात् और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात्, भरणपोषण की रकम का अवधारण करने के लिए कोई जांच कर सकेगा ।

(4) भरणपोषण के लिए मासिक भत्ते हेतु और कार्यवाही के खर्चे के लिए उपधारा (2) के अधीन फाइल किए गए किसी आवेदन का, ऐसे व्यक्ति को आवेदन की सूचना की तामील की तारीख से नब्बे दिन के भीतर निपटान किया जाएगा :

परन्तु अधिकरण, आपवादिक परिस्थितियों में उक्त अवधि को, कारणों को लेखबद्ध करते हुए एक बार में तीस दिन की अधिकतम अवधि के लिए, विस्तारित कर सकेगा ।

(5) उपधारा (1) के अधीन भरणपोषण के लिए कोई आवेदन एक या अधिक व्यक्तियों के विरुद्ध फाइल किया जा सकेगा :

परन्तु ऐसे बालक या नातेदार भरणपोषण के लिए आवेदन में माता-पिता का भरणपोषण करने के लिए दायी अन्य व्यक्ति को पक्षकार बना सकेंगे ।

(6) जहां भरणपोषण का आदेश एक या अधिक व्यक्तियों के विरुद्ध किया गया था, वहां उनमें से एक व्यक्ति की मृत्यु से भरणपोषण का संदाय जारी रखने के अन्य व्यक्तियों के दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(7) भरणपोषण के लिए कोई ऐसा भत्ता और कार्यवाही के खर्चे आदेश की तारीख से या यदि ऐसा आदेश किया जाता है, यथास्थिति, भरणपोषण या कार्यवाही के खर्चे, आवेदन की तारीख से, संदेय होंगे ।

(8) यदि ऐसे बालक या नातेदार, जिन्हें ऐसा आदेश दिया जाता है, पर्याप्त हेतुक के बिना आदेश का पालन करने में असफल रहते हैं, तो कोई ऐसा अधिकरण, आदेश के प्रत्येक भंग के लिए, जुर्माने का उद्ग्रहण करने के लिए उपबंधित रीति में देय रकम के उद्ग्रहण का वारंट जारी कर सकेगा और ऐसे व्यक्ति को, यथास्थिति, प्रत्येक मास के संपूर्ण भरणपोषण भत्ते या उसके किसी भाग के लिए और कार्यवाही के खर्चे के लिए ऐसे वारंट के निष्पादन के पश्चात् असंदत्त शेष भाग के लिए कारावास से, जो एक मास तक का हो सकेगा या यदि संदाय शीघ्र किया जाता है तो संदाय करने तक, इनमें से जो भी पूर्वतर हो, दंडादिष्ट कर सकेगा :

परन्तु इस धारा के अधीन शोध्य किसी रकम की वसूली के लिए कोई वारंट तब तक जारी नहीं किया जाएगा, जब तक उस तारीख से, जिसको यह रकम शोध्य हो जाती है । तीन मास की अवधि के भीतर उस रकम के उद्ग्रहण के लिए अधिकरण को आवेदन नहीं किया जाएगा ।

6. **अधिकारिता और प्रक्रिया** – (1) धारा 5 के अधीन बालकों या नातेदारों के विरुद्ध किसी जिले में कार्यवाही शुरू की जा सकेगी, –

(क) जहां वह निवास करता है या उसने अंतिम बार निवास किया है ; या

(ख) जहां बालक या नातेदार निवास करता है ।

(2) धारा 5 के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर, अधिकरण, उस बालक या नातेदार, जिसके विरुद्ध आवेदन फाइल किया गया है, की उपस्थिति उपाप्त करने के लिए आदेशिका जारी करेगा ।

(3) बालक या नातेदार की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अधिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन यथाउपबंधित प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियां होंगी ।

(4) ऐसी कार्यवाहियों के सभी साक्ष्य उस बालक या नातेदार की, जिसके विरुद्ध भरणपोषण के संदाय के लिए आदेश किया जाना प्रस्तावित है, उपस्थिति में लिए जाएंगे और समन मामलों के लिए विहित रीति में अभिलिखित किए जाएंगे :

परन्तु यदि अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि वह बालक या नातेदार जिसके विरुद्ध भरणपोषण के संदाय के लिए आदेश किया जाना प्रस्तावित है, जानबूझकर तामील से बच रहा है, या जानबूझकर अधिकरण में उपस्थित होने की उपेक्षा कर रहा है, तो अधिकरण मामले की एकपक्षीय रूप से सुनवाई करने और अवधारित करने के लिए कार्यवाही कर सकेगा ।

(5) जहां बालक या नातेदार भारत से बाहर निवास कर रहा है, वहां अधिकरण द्वारा समन ऐसे प्राधिकारी के माध्यम से तामील किए जाएंगे, जिसे केन्द्रीय सरकार राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ।

(6) अधिकरण धारा 5 के अधीन आवेदन की सुनवाई करने से पूर्व उसे सुलह अधिकारी को निर्दिष्ट कर सकेगा और ऐसा सुलह अधिकारी अपने निष्कर्षों को एक मास के भीतर प्रस्तुत करेगा और यदि सौहार्द्रपूर्ण सुलह हो गई है तो अधिकरण उस आशय का आदेश पारित करेगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए "सुलह अधिकारी" से धारा 5 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति या संगठन का प्रतिनिधि या धारा 18 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अभिहित भरणपोषण अधिकारी या इस प्रयोजन के लिए अधिकरण द्वारा नामनिर्दिष्ट कोई अन्य व्यक्ति अभिप्रेत है ।

7. **भरणपोषण अधिकरण का गठन** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम में प्रारंभ की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, प्रत्येक उपखंड के लिए एक या अधिक अधिकरणों का, जो वह धारा 5 के अधीन भरणपोषण के आदेश के न्यायनिर्णयन और उसका विनिश्चय करने के लिए आवश्यक समझे, गठन करेगी ।

(2) अधिकरण की अध्यक्षता राज्य के उपखंड अधिकारी से अन्यून पंक्ति के अधिकारी द्वारा की जाएगी ।

(3) जहां, किसी क्षेत्र के लिए दो या अधिक अधिकरण गठित किए जाते हैं, वहां राज्य सरकार, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, उनके बीच कारबार के वितरण को विनियमित कर सकेगी ।

8. **जांच की दशा में संक्षिप्त प्रक्रिया** – (1) अधिकरण, धारा 5 के अधीन कोई जांच करने में, ऐसे किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस

निमित्त राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं, ऐसी संक्षिप्त प्रक्रिया का अनुसरण करेगा, जो वह ठीक समझे ।

(2) अधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने और साक्षियों को हाजिर कराने तथा दस्तावेजों और भौतिक पदार्थों को प्रकट करने का पता कराने और उनको पेश करने के लिए बाध्य करने के प्रयोजन के लिए तथा ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए, जो विहित किए जाएं, सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी और अधिकरण दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

(3) इस निमित्त बनाए जाने वाले किसी नियम के अधीन रहते हुए, अधिकरण भरणपोषण के लिए किसी दावे का न्यायनिर्णयन करने और उसका विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए, जांच करने में उसकी सहायता करने के लिए ऐसे किसी एक या अधिक व्यक्तियों को चुन सकेगा, जिनके पास जांच से सुसंगत किसी विषय का विशेष ज्ञान हो ।

9. **भरणपोषण का आदेश** – (1) यदि, यथास्थिति, बालक या नातेदार ऐसे वरिष्ठ नागरिक का, जो स्वयं अपना भरणपोषण करने में असमर्थ हैं, भरणपोषण करने से उपेक्षा या इनकार करते हैं तो अधिकरण, ऐसी उपेक्षा या इनकार के बारे में समाधान हो जाने पर, ऐसे बालकों या नातेदारों को ऐसे वरिष्ठ नागरिक के भरणपोषण के लिए ऐसी मासिक दर पर मासिक भत्ता देने का, जो अधिकरण ठीक समझे और ऐसे वरिष्ठ नागरिक को उस भत्ते का संदाय करने का आदेश दे सकेगा जो अधिकरण समय-समय पर निदेश दे ।

(2) ऐसा अधिकतम भरणपोषण भत्ता, जिसका ऐसे अधिकरण द्वारा आदेश दिया जाए, वह होगा, जो राज्य सरकार द्वारा विहित किया जाए और जो दस हजार रुपए प्रति मास से अधिक नहीं होगा ।

10. **भत्ते में परिवर्तन** – (1) भरणपोषण के लिए किसी तथ्य के दुर्व्यपदेशन या भूल के या धारा 5 के अधीन मासिक भत्ता प्राप्त करने वाले किसी व्यक्ति की अथवा भरणपोषण के लिए मासिक भत्ते का संदाय करने के लिए उस धारा के अधीन आदेशित व्यक्ति की परिस्थितियों में परिवर्तन पर, अधिकरण भरणपोषण के भत्ते में ऐसा परिवर्तन कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

(2) जहां, अधिकरण को यह प्रतीत होता है कि किसी सक्षम सिविल न्यायालय के किसी विनिश्चय के परिणामस्वरूप धारा 9 के अधीन किए गए किसी आदेश को रद्द या परिवर्तित किया जाना चाहिए तो वह तद्नुसार, यथास्थिति, उस आदेश को रद्द या परिवर्तित कर सकेगा ।

11. **भरणपोषण के आदेश का प्रवर्तन** – (1) भरणपोषण के आदेश और कार्यवाहियों के व्ययों के संबंध में आदेश की प्रति, यथास्थिति, उस वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता को, जिसके पक्ष में वह आदेश किया गया है किसी फीस के संदाय के बिना दी जाएगी और ऐसा आदेश किसी अधिकरण द्वारा ऐसे किसी स्थान पर, जहां वह व्यक्ति है, जिसके विरुद्ध वह आदेश किया गया है, पक्षकारों की पहचान और यथास्थिति, शोध्य भत्ते, या व्यय के असंदाय के बारे में उस अधिकरण का समाधान हो जाने पर प्रवृत्त किया जाएगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किए गए भरणपोषण के आदेश का वही बल और प्रभाव होगा जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित आदेश का होता है और वह उस संहिता द्वारा ऐसे आदेश के निष्पादन के लिए विहित रीति में निष्पादित किया जाएगा ।

12. **कतिपय मामलों में भरणपोषण के संबंध में विकल्प** – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 में किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई वरिष्ठ नागरिक या माता-पिता उक्त अध्याय के अधीन भरणपोषण के लिए हकदार हैं और इस अधिनियम के अधीन भरणपोषण के लिए भी हकदार हैं, वहां, वह उक्त संहिता के अध्याय 9 के उपबंधों पर, प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उन दोनों अधिनियमों में से किसी के अधीन ऐसे भरणपोषण का दावा कर सकेगा, किन्तु दोनों के अधीन नहीं ।

13. **भरणपोषण की रकम का जमा किया जाना** – जब इस अध्याय के अधीन कोई आदेश किया जाता है तब ऐसा बालक या नातेदार, जिससे ऐसे आदेश के निबंधनों के अनुसार किसी रकम का संदाय करना अपेक्षित है, अधिकरण द्वारा आदेश सुनाए जाने की तारीख से तीस दिन के भीतर आदेशित संपूर्ण रकम ऐसी रीति में जमा करेगा, जो अधिकरण निदेश दे ।

14. **जहां कोई दावा अनुज्ञात किया जाता है वहां ब्याज का अधिनिर्णय** – जहां कोई अधिकरण इस अधिनियम के अधीन भरणपोषण का कोई आदेश करता है, वहां ऐसा अधिकरण यह निदेश दे सकेगा कि भरणपोषण की रकम के अतिरिक्त, ऐसी दर पर और ऐसी तारीख से, जो

आवेदन करने की तारीख से पूर्व की तारीख न हो और जो अधिकरण द्वारा अवधारित की जाए, साधारण ब्याज का भी संदाय किया जाएगा जो पांच प्रतिशत से कम और अठारह प्रतिशत से अधिक नहीं होगा :

परंतु जहां दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन भरणपोषण के लिए कोई आवेदन इस अधिनियम के प्रारंभ पर किसी न्यायालय के समक्ष लंबित है, वहां न्यायालय माता-पिता के अनुरोध पर ऐसे आवेदन को वापस लेने के लिए अनुज्ञात करेगा और ऐसे माता-पिता अधिकरण के समक्ष भरणपोषण के लिए आवेदन फाइल करने के हकदार होंगे ।

15. **अपील अधिकरण का गठन** – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अधिकरण के आदेश के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए एक अपील अधिकरण का गठन कर सकेगी ।

(2) अपील अधिकरण का अध्यक्ष ऐसा अधिकारी होगा, जो जिला मजिस्ट्रेट की पंक्ति से नीचे का न हो ।

16. **अपीलें** – (1) अधिकरण के किसी आदेश द्वारा व्यथित, यथास्थिति, कोई वरिष्ठ नागरिक या कोई माता-पिता आदेश की तारीख से साठ दिन के भीतर अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा :

परंतु अपील पर, वह बालक या रिश्तेदार, जिससे ऐसे भरणपोषण के आदेश के निबंधनों के अनुसार किसी रकम का संदाय किए जाने की अपेक्षा की गई है, ऐसे माता-पिता को इस प्रकार आदेशित रकम का संदाय अपील अधिकरण द्वारा निदेशित रीति से करता रहेगा :

परंतु यह और कि अपील अधिकरण, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय के भीतर अपील करने से पर्याप्त कारण से निवारित हुआ था, साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(2) अपील अधिकरण, अपील की प्राप्ति पर, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील करवाएगा ।

(3) अपील अधिकरण उस अधिकरण से, जिसके आदेश के विरुद्ध अपील की जाती है, कार्यवाहियों का अभिलेख मंगा सकेगा ।

(4) अपील अधिकरण, अपील और मंगाए गए अभिलेख की परीक्षा

करने के पश्चात् या तो अपील को मंजूर कर सकेगा या खारिज कर सकेगा ।

(5) अपील अधिकरण, अधिकरण के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील का न्यायनिर्णयन और विनिश्चय करेगा तथा अपील अधिकरण का आदेश अंतिम होगा :

परंतु कोई अपील तब तक खारिज नहीं की जाएगी, जब तक कि दोनों पक्षकारों को वैयक्तिक रूप से या सम्यक् रूप से प्राधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से सुने जाने का अवसर न दे दिया गया हो ।

(6) अपील अधिकरण अपना आदेश अपील की प्राप्ति के एक मास के भीतर लिखित में सुनाने का प्रयास करेगा ।

(7) उपधारा (5) के अधीन किए गए प्रत्येक आदेश की एक-एक प्रति दोनों पक्षकारों को नि:शुल्क भेजी जाएगी ।

17. **विधिक अभ्यावेदन का अधिकार** – किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, अधिकरण या अपील अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के किसी पक्षकार का प्रतिनिधित्व किसी विधि व्यवसायी द्वारा नहीं किया जाएगा ।

18. **भरणपोषण अधिकारी** – (1) राज्य सरकार, जिला समाज कल्याण अधिकारी या जिला समाज कल्याण अधिकारी की पंक्ति से अन्यून पंक्ति के किसी अधिकारी को, चाहे वह किसी नाम से ज्ञात हो, भरणपोषण अधिकारी के रूप में पदाभिहित करेगी ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट भरणपोषण अधिकारी, यदि कोई माता-पिता ऐसी वांछा करे, उसका, यथास्थिति, अधिकरण या अपील अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के दौरान प्रतिनिधित्व करेगा ।

अध्याय 3
वृद्धाश्रमों की स्थापना

19. **वृद्धाश्रमों की स्थापना** – (1) राज्य सरकार, ऐसी पहुंच के भीतर के स्थानों पर, चरणबद्ध रीति में, उतने वृद्धाश्रम स्थापित करेगी और उनका अनुरक्षण करेगी, जितने वह आवश्यक समझे और आरंभ में प्रत्येक जिले में कम-से-कम एक ऐसे वृद्धाश्रम की स्थापना करेगी, जिसमें न्यूनतम एक सौ पचास ऐसे वरिष्ठ नागरिकों को आवास सुविधा दी जा सके, जो निर्धन हैं ।

(2) राज्य सरकार, वृद्धाश्रमों के प्रबंध की एक स्कीम विहित करेगी,

जिसके अंतर्गत उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के मानदंड और विभिन्न प्रकार की सेवाएं भी हैं, जो ऐसे आश्रमों के निवासियों की चिकित्सीय देखरेख और मनोरंजन के साधनों के लिए आवश्यक हैं ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "निर्धन" से कोई ऐसा वरिष्ठ नागरिक अभिप्रेत है, जिसके पास स्वयं के भरणपोषण करने के लिए उतने पर्याप्त साधन नहीं हैं, जो राज्य सरकार द्वारा, समय-समय पर अवधारित किए जाएं ।

अध्याय 4

वरिष्ठ नागरिकों की चिकित्सीय देखरेख के लिए उपबंध

20. **वरिष्ठ नागरिकों के लिए चिकित्सा सहायता** – राज्य सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि, –

(i) सरकारी अस्पताल या सरकार द्वारा पूर्णत: या भागत: वित्तपोषित अस्पताल, सभी वरिष्ठ नागरिकों को, यथासंभव, बिस्तर प्रदान करेंगे ;

(ii) वरिष्ठ नागरिकों के लिए पृथक् पंक्तियों की व्यवस्था की जाएगी ;

(iii) चिरकारी, जानलेवा और ह्वासी रोगों के उपचार के लिए सुविधाएं वरिष्ठ नागरिकों तक विस्तारित की जाएं ;

(iv) चिरकारी वृद्धावस्था के रोगों और वृद्धावस्था के संबंध में अनुसंधान क्रियाकलापों का विस्तार किया जाए ;

(v) जराचिकित्सीय देखरेख में अनुभव रखने वाले चिकित्सा अधिकारी की अध्यक्षता वाले प्रत्येक जिला अस्पताल में जराचिकित्सा के रोगियों के लिए निर्दिष्ट सुविधाएं नि:शुल्क दी जाएं ।

अध्याय 5

वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की संरक्षा

21. **वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए प्रचार, जागरूकता, आदि के उपाय** – राज्य सरकार, यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय करेगी कि –

(i) इस अधिनियम के उपबंधों का जनमाध्यम, जिसके अंतर्गत टेलीविजन, रेडियो और मुद्रण माध्यम भी है, से नियमित अंतरालों पर

व्यापक प्रचार किया जाए ;

(ii) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के अधिकारियों को, जिसके अंतर्गत पुलिस अधिकारी और न्यायिक सेवा के सदस्य भी हैं, इस अधिनियम से संबंधित मुद्दों पर समय-समय पर सुग्राही और जागरूक होने का प्रशिक्षण दिया जाए ;

(iii) वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण से संबंधित मुद्दों का समाधान करने के लिए विधि, गृह, स्वास्थ्य और कल्याण से संबद्ध मंत्रालयों या विभागों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के बीच प्रभावी समन्वय और उनका कालिक पुनर्विलोकन किया जाए ।

22. **प्राधिकारी, जिन्हें इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए विनिर्दिष्ट किया जा सकेगा** – (1) राज्य सरकार, किसी जिला मजिस्ट्रेट को ऐसी शक्तियां प्रदत्त कर सकेगी और उस पर ऐसे कर्तव्य अधिरोपित कर सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों का उचित रूप से पालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो, और जिला मजिस्ट्रेट, अपने अधीनस्थ ऐसे अधिकारी को, जो इस प्रकार प्रदत्त या किसी शक्ति का प्रयोग और अधिरोपित सभी या किसी कर्तव्य का पालन करेगा और वे स्थानीय सीमाएं विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिनके भीतर ऐसी शक्तियों या कर्तव्यों का, जो विहित किए जाएं, उस अधिकारी द्वारा पालन किया जाएगा ।

(2) राज्य सरकार, वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक व्यापक कार्य योजना विहित करेगी ।

23. **कतिपय परिस्थितियों में संपत्ति के अंतरण का शून्य होना** – (1) जहां कोई वरिष्ठ नागरिक, जिसने इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् अपनी संपत्ति का दान के रूप में या अन्यथा अंतरण इस शर्त के अधीन रहते हुए किया है कि अंतरिती, अंतरक को बुनियादी सुख-सुविधाएं और बुनियादी भौतिक आवश्यकताएं प्रदान करेगा और ऐसा अंतरिती ऐसी सुख-सुविधाओं तथा भौतिक आवश्यकताएं प्रदान करने से इनकार करेगा या असफल रहेगा तो संपत्ति का उक्त अंतरण कपट या प्रपीड़न या अनावश्यक प्रभाव के अधीन किया गया समझा जाएगा और अंतरक के विकल्प पर अधिकरण द्वारा शून्य घोषित किया जाएगा ।

(2) जहां किसी वरिष्ठ नागरिक को किसी संपदा से भरणपोषण प्राप्त

करने का अधिकार है और ऐसी संपदा या उसका भाग अंतरित कर दिया जाता है, यदि अंतरिती को उस अधिकार की जानकारी है या, यदि अंतरण बिना प्रतिफल के है तो भरणपोषण प्राप्त करने का अधिकार अंतरिती के विरुद्ध प्रवृत्त किया जा सकेगा ; न कि उस अंतरिती के विरुद्ध जो प्रतिफल के लिए है और जिसके पास अधिकार की सूचना नहीं है ।

(3) यदि कोई वरिष्ठ नागरिक उपधारा (1) और उपधारा (2) के अधीन अधिकार को प्रवर्तित कराने में असमर्थ है तो धारा 5 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट किसी संगठन द्वारा उसकी ओर से कार्रवाई की जा सकेगी ।

अध्याय 6

अपराध और विचारण के लिए प्रक्रिया

24. **वरिष्ठ नागरिकों को अरक्षित छोड़ना और उनका परित्याग** – जो कोई, जिसके पास वरिष्ठ नागरिक की देखरेख या सुरक्षा है, ऐसे वरिष्ठ नागरिक को, किसी स्थान में, ऐसे वरिष्ठ नागरिक का पूर्णतया परित्याग करने के आशय से छोड़ेगा, वह ऐसी अवधि के किसी कारावास से, जो तीन मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

25. **अपराधों का संज्ञान** – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध संज्ञेय और जमानतीय होगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का किसी मजिस्ट्रेट द्वारा संक्षिप्त विचारण किया जाएगा ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

26. **अधिकारियों का लोक सेवक होना** – इस अधिनियम के अधीन कृत्यों को प्रयोग करने के लिए नियुक्त किए गए प्रत्येक अधिकारी या कर्मचारिवृन्द को, भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा ।

27. **सिविल न्यायालय की अधिकारिता का वर्जन** – किसी सिविल न्यायालय को ऐसे किसी मामले में अधिकारिता नहीं होगी, जिसे इस अधिनियम का कोई उपबंध लागू होता है और किसी सिविल न्यायालय

द्वारा ऐसी किसी बात की बाबत, जो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन की गई है या किए जाने के लिए आशयित है, कोई व्यादेश नहीं दिया जाएगा ।

28. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए किन्हीं नियमों या आदेशों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के संबंध में कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों या स्थानीय प्राधिकारी या उस सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध न होगी ।

29. **कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति** – यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो राज्य सरकार राजपत्र में प्रकाशित ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो, ऐसे उपबंध बना सकेगी, जो उस कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के आरंभ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

30. **निदेश देने की केन्द्रीय सरकार की शक्ति** – केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों का निष्पादन करने के बारे में किसी राज्य सरकार को निदेश दे सकेगी ।

31. **केन्द्रीय सरकार की पुनर्विलोकन की शक्ति** – केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन की प्रगति का कालिक पुनर्विलोकन और निगरानी कर सकेगी ।

32. **नियम बनाने की राज्य सरकार की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित के लिए उपबंध कर सकेंगे –

(क) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन विहित किए जाएं, धारा 5 के अधीन जांच करने की रीति ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन अन्य प्रयोजनों के लिए अधिकरण की शक्ति और प्रक्रिया ;

(ग) अधिकतम भरणपोषण भत्ता, जो धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन अधिकरण द्वारा आदेशित किया जाए ;

(घ) धारा 19 की उपधारा (2) के अधीन वृद्धाश्रम के प्रबंध के लिए स्कीम, जिसके अंतर्गत उनके द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं के मानक और विभिन्न प्रकार की सेवाएं भी हैं, जो ऐसे आश्रमों के निवासियों की चिकित्सीय देखरेख और मनोरंजन के साधनों के लिए आवश्यक हों ;

(ङ) धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए प्राधिकारियों की शक्तियां और कर्तव्य ;

(च) धारा 22 की उपधारा (2) के अधीन वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति को सुरक्षा प्रदान करने के लिए व्यापक कार्य योजना ;

(छ) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना है या विहित किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष, जहां वह दो सदनों से मिलकर बना है या जहां ऐसे विधान-मंडल में एक सदन है, वहां उस सदन के समक्ष, रखा जाएगा ।